सिद्धयोग

संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

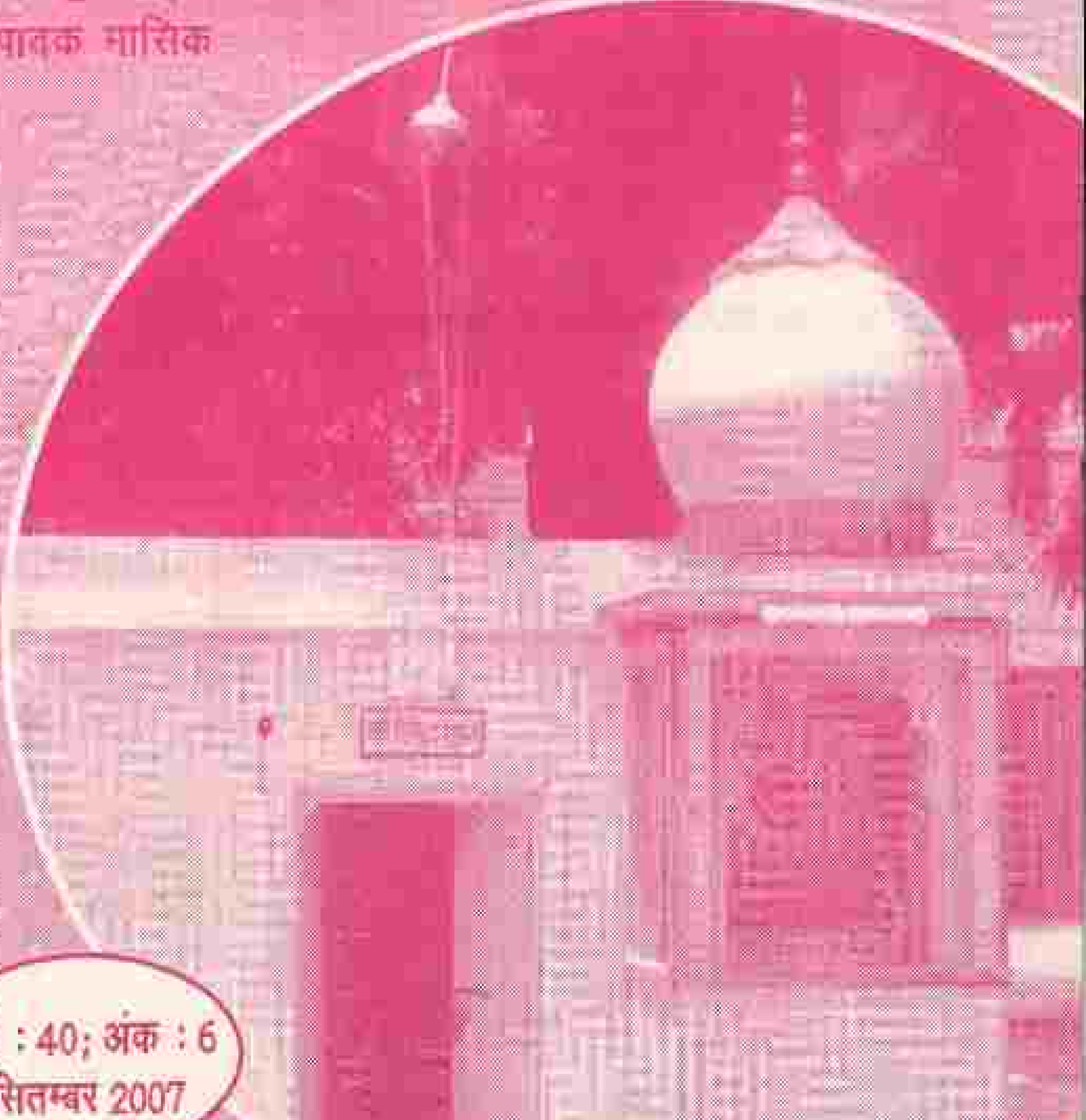

वर्ष : 40; अंक : 6
सितम्बर 2007

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

आदंगा कुविदंगा शतं या भेषजानि ते।
तेषामसि त्वमुत्तममास्त्रावम रोगणाम्।।

(अथर्ववेद)

संसार में जितनी भी, रोग और क्लेशनाशक औषधियाँ है, उनमें सबसे श्रेष्ठ, सब औषधियों की एक औषधि परब्रह्म परमात्मा ही है। यानि समस्त रोगों और क्लेशों से बचने के लिए सर्वश्रेष्ठ औषधि है – प्रभु के नाम का स्मरण करना और प्रभु की प्रकृति के अनुकूल जीवन जीने का प्रयत्न करना।

◆ ◆ ◆

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।

(भर्तृहरि नीतिशतक)

अर्थात् दान देना, धन का स्वयं उपभोग कर उसका उपभोग करना और नष्ट होना – ये धन की तीन गतियाँ हैं। जो व्यक्ति न तो धन का दान करता है और न स्वयं ही धन का उपयोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है यानि ऐसा धन नष्ट हो जाता है।

◆ ◆ ◆

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

(मनुस्मृति)

जैसे अग्नि से धौंके हुए स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते है, इसी प्रकार प्राणायाम के करने से इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते है।

◆ ◆ ◆

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः।।

अर्थात् ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट तप है। इससे बढ़कर तपश्चर्या दूसरी नहीं हो सकती। ऊर्ध्वरेता पुरुष इस लोक में मनुष्य रूप में प्रत्यक्ष देवता ही है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 40
अंक : 6

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यौमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थं बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

सितम्बर
2007

न विद्या येषां श्रीर्न शरणमपीषन्न च गुणाः
परित्यक्ता लोकैरपि वृजिनयुक्ताः श्रुतिजडाः।
शरण्यं यं तेऽपि प्रसृतगुणमाश्रित्य सुजना
विमुक्तास्तं वन्दे यदुपतिमहं कृष्णममलम्।।

अर्थात्

जो जिनके पास न विद्या है, न कोई सहारा है, जिनमें न कोई गुण है, न वेद शास्त्रों का ज्ञान है, ऐसे मनुष्य भी जिन शरणागत पालक प्रभु की शरण लेकर सन्त बन जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं, उन विश्वविख्यात गुणों वाले अमलात्मा यदुनाथ भगवान् श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) रामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डली के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. गुरुपूर्णिमा के संदर्भ में विशेष – श्री द्वारका प्रसाद शर्मा 9
4. दिव्य प्रसाद – श्री पूर्णचन्द्र पंत शास्त्री 13
5. गुंजन – श्री विजय सिंह 19
6. सबका सदा चाहो परम कल्याण (कविता) 21
7. ज्ञान एवं कर्मयोग में श्रेष्ठता से भ्रमित अर्जुन – डॉ. जे.एन. राय 22
8. शिष्य संस्कार मुगलान की शिक्षाप्रद घटना – श्री केशवदेव उपाध्याय 24
9. संसार-ग्राह से बचने के उपाय 27
10. पूज्य श्री रामाश्रय जी – श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव 28
11. 'स्व' का चिंतन – श्री अशोक दिग्विजय 32
12. बालक राजू को जीवनदान – श्री जगदीश राय बंसल 35
13. परम चेतन हमारा स्वरूप – कु. रचना शर्मा 38
14. श्री सिद्धगुफा में रुद्रमहा यज्ञ 40

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 120.00
द्विवार्षिक	: रु. 210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

● विशेष लेख

दीक्षा तत्व

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में 'दीक्षा' शब्द का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में होता है। दीक्षा शब्द के अन्दर '**दीयते**' और '**क्षीयते**' दो क्रियाओं का प्रयोग स्पष्ट रूप से आभाषित होता है। यदि हम दीक्षा का अर्थ संस्कृत व्याकरण के माध्यम से ठीक–ठीक करें तो "**दीयते ज्ञानम् क्षीयते तदावरणम् च**" स्पष्ट रूपेण प्रस्फुटित होता है।

अर्थात्–जिस क्रिया के द्वारा ज्ञान, धर्म, सत्य, शक्ति को प्रदान किया जाय और उनके बीच की रुकावट को खत्म किया जाय उसका नाम शास्त्रीय परिभाषा ने दीक्षा कहा गया है। वस्तुतः विचार करके देखा जाय तो दीयते और क्षीयते का प्रयोग मनुष्य की हर हरकत के द्वारा प्रतिक्षण होता रहता है। मनुष्य अपनी वाणी के द्वारा सत्य का उपदेश करता है और सत्योपदेश के विपरीत विरोधी तत्वों को नष्ट करता है। यहाँ पर दीयते और क्षीयते दोनों क्रियाओं का सही प्रयोग सहज में ही दिखलाई दे रहा है। अपनी वाक् शक्ति के द्वारा मनुष्य जैसे सत्य ज्ञान प्रदान करता है और उसके विपरीत भावों का क्षय करता है, इसी प्रकार वह अपनी आँखों से सत्य सुगम मार्ग का दर्शन करता है और कंटकाकीर्ण अहितकर कुमार्ग का निवारण करता है। यहाँ पर नेत्र दृष्टि के द्वारा भी यही उपरोक्त दोनों क्रियायें स्पष्ट रूपेण आभासित होती हैं। कहीं किसी स्थान पर एक बच्चा अपनी माँ की स्मृति में रुदन कर रहा है और उसकी माँ जल्दी से आकर उसको उठाकर कंठ से लगा लेती है। माँ के प्यार के स्पर्श को पाकर बच्चा दीयते और क्षीयते दोनों क्रियाओं का अपने मन में अनुभव करता है। बच्चे को माँ के प्यार भरे स्पर्श ने एक विशेष आनन्द को दिया और रोदन का कष्ट जो उस बालक के मन में हो रहा था तत्काल क्षय भी हो गया। इसी प्रकार मनुष्य का मन भी हर समय इन्हीं दोनों क्रियाओं के अनुसार ही क्रियान्वित रहा करता है। जहाँ पर मनुष्य का मन किसी के प्रति शुभ विचार को धारण करता है, वहाँ पर एक प्रकार से शुभ भावों का प्रदान ही है और ठीक इसके विपरीत इन शुभ भावों के आते ही कुभावों का निष्कासन भी साथ ही हो जाना बिल्कुल अनिवार्य है। यह क्रिया हर समय प्राणी मात्र में होती रहती है। इसी के आधार पर हमारे शास्त्रों में एक निर्णयात्मक सिद्धान्त का आदेश दिया कि "**मातृवान्, पितृवान्, आचार्यवान्, पुरुषोवेद**" अर्थात् माँ वाला व्यक्ति परमात्मा को पा जाता है। सत्य सिद्धान्त यह रहा कि "**मातृवान पुरुषोवेद**" माँ, जन्म लेने के बाद अपने बच्चे के मन को इतना अधिक खुश कर देती है कि उसके मन से मिथ्या भ्रमों का नाश पहले से ही होता चला आता है। माता अपनी वाणी से बच्चे को कहती है "**शुद्धोसि बुद्धोसि निरन्जनोसि संसार माया परिवर्जितोसि**" अर्थात् – हे बेटा ! तू शुद्ध–बुद्ध निरंजन है और संसार की माया मोह से बिल्कुल बचा हुआ है। माता का यह उपदेश

उस बच्चे को अमरत्व का ज्ञाता बन जाता है। उसके अन्दर नीच कुत्सित भावों का लवलेश भी नहीं रहता। माता के उपदेशों ने **'अहं ब्रह्म अस्मि'** के भावों को पूर्णरूपेण पुष्ट कर डाला। इस शिक्षा के बाद **'पितृवान् पुरुषोवेद'** पिता वाला परमात्मा को जानता है। माता की शिक्षा के बाद पिता अपने बच्चे को नित्य नैमित्तिक कर्मों का उपदेश करता है और माता के दिये उपदेश को क्रियात्मक रूप में परिणित करा देता है, पिता के उपदेशों के द्वारा उसके कराये हुए क्रियात्मक जीवन के द्वारा ब्रह्मचारी आचार्य चरणों की सेवा के लायक बन गया और आचार्यवान् **'पुरुषोवेद'** क्रिया को पूर्णरूपेण प्रगट कर लेने का अधिकार प्राप्त कर लिया। यह एक प्रकार से स्पष्टरूपेण सावधान ही है। कौन पुरुष कितना शक्तिपात कर सकता है, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। **'स्वयं शक्तो विनियिषु शक्तिमा धातुम् समर्थो भवति।'** अर्थात् – जो स्वयं सामर्थ्यवान है, वहीं दूसरों को शक्ति दे सकता है।

स्वयं तीर्णः परान् तारयति।'

जो आप तैरना जानता है वही दूसरों को तैरा भी सकता है। जो आप तैरना नहीं जानता और दूसरों की चेष्टा करता है, उसके लिए वही सिद्धान्त लागू रहेगा। **स्वस्वयं निमग्नः परान् अपि निमज्जयति।**

जो स्वयं ही डूब रहा है, वह दूसरों को क्या बचायेगा? प्रत्युत एक दो को साथ लेकर डूब ही जायेगा। इसलिए शक्तिपात करने का अधिकार, दूसरे शब्दों में दीक्षा देने का अधिकार केवल मात्र सामर्थ्यवान गुरुदेव को ही है। तन्त्र शास्त्रों में इस प्रकार का उपदेश भी है कि –

मंत्र चैतन्य विज्ञाता गुरुरुक्तः स्वयं भुवा।

मंत्र चैतन्य को जानने वाला, मंत्र के अन्दर चैतन्यत्व प्रदान करने वाला गुरु ही गुरु कहा गया है। इस प्रकार से गुरु का स्पष्टीकरण करते हुए दूसरे स्थान पर और भी स्पष्ट कह दिया –

गुरोर्यस्यैव संस्पर्शात् परानन्दोऽभिजायते।
गुरुं तमेव वृणुयात् नापरं मतिमान्नरः॥

अर्थात् – जिसके स्पर्श मात्र से अपने शरीर में परमानन्द की अनुभूति हो, साधक को चाहिये कि उसको ही अपना गुरु बनाये, अन्य सर्वसाधारण को नहीं। गुरु की वाणी के अन्दर ताकत होती है। गुरु के शब्दों के अन्दर ताकत होती है। गुरु के स्पर्श के अन्दर ताकत होती है। गुरु के मन की ताकत शिष्यों का हर समय भला किया करती है। जिस गुरु के अन्दर से इस प्रकार की शक्ति का बराबर निष्कासन होता रहता है, ऐसा गुरु स्वयं शिव रूप है। 'योग वाशिष्ठ' में महर्षि वशिष्ठ जी ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया है:–

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात्, कृपया शिष्य देहके।
जनयेद्यः समावेशं शांभवं सहि दाशिकः॥

अर्थात्–जिसके दर्शन, स्पर्शन एव शब्द से शिष्य के शरीर में शक्ति संचरित हो वह गुरु स्वयं शिव का स्वरूप है और शक्तिपात का अधिकारी है। गुरुदेव अपने शिष्यों को योग दीक्षा देते

हुए स्पर्श, दृष्टि, मनन एवं वाणी के द्वारा दीक्षा देकर शिष्यों के संताप को दूर किया करते हैं। आज कलिकाल के समय में शिष्य–संतापहारी गुरु की प्राप्ति बड़ी कठिनता से हो पाती है। इस प्रकार के गुरुओं की कोई कमी नहीं जो अपने स्वार्थों को दृष्टिगत रखकर शिष्य संतापहारी तो बने रहते हैं, किन्तु अपने शिष्यों के कल्याण का उनको कोई ख्याल नहीं रहता। गुरुदेव द्वारा दी जाने वाली दीक्षाओं का वर्णन तन्त्र शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से है।

स्पर्श–दीक्षा

यथा पक्षी स्वपक्षाभ्यां शिशून् संवर्धयेच्छनैः।
स्पर्श दीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये।।

अर्थात्– जैसे पक्षी अपने पंखों के द्वारा स्पर्श करके अपने शिशुओं का संवर्धन किया करता है और समय आने पर उनको प्रकट कर देता है। इसी प्रकार से गुरुदेव स्पर्श के द्वारा अपने शिष्यों का संवर्धन करते हैं और उत्तरोत्तर वह स्पर्श–दीक्षा से प्राप्त हुई शक्ति उनको यथार्थ शुद्ध स्थिति में लाकर रखती है।

दृग–दीक्षा

स्वापत्यानि यथा मत्स्यो वीक्षणेनैव पोषयेत्।
दृग्भ्यां दीक्षोपदेशश्च तादृशः परमेश्वरि।।

अर्थात्–जिस प्रकार से मत्स्य अपनी दृष्टि के द्वारा अपने बच्चों का पोषण किया करता है इसी प्रकार से गुरुदेव अपनी दृष्टि के द्वारा अपने शिष्यों का पोषण किया करते हैं।

मानस–दीक्षा

यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यानमात्रेण पोषयेत्।
वेध दीक्षोपदेशश्च मानुषस्य तथा विधः।।

अर्थात्–जिस प्रकार कछुआ चिन्तन मात्र से अपने बच्चों का रक्षण करता है। इसी प्रकार से गुरुदेव अपने मानस शुभ संकल्प के द्वारा अपने शिष्यों का पोषण किया करते हैं। पुराणों में बहुत प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है।

शाम्भवी दीक्षा के विषय में तो बिलकुल स्पष्ट कह दिया है–

गुरोरालोक मात्रेण स्पर्शात्संभाषणपादपि।
सद्यः सज्ञा भवेज्जन्तो दीक्षा साशाम्भवी मता।।

अर्थात्– जिसके देखने मात्र से, स्पर्शमात्र से या वाणी के उच्चारण मात्र से तत्काल शक्ति सचरित हो जाती है वही शाम्भवी दीक्षा कहलाती है।

जिसके द्वारा शक्तिपात नहीं होता वस्तुतः वह गुरु कहलाने का अधिकारी नहीं। जब तक शिष्य के शरीर में शक्ति संचार नहीं होता तब तक उस शिष्य की सभी क्रियायें उसके प्रयास मात्र ही है। उनका फल केवल मात्र इतना ही होता है, जिससे पुण्य वृद्धि होती रहे और मनुष्य शक्तिपात

का अधिकारी बन जाय। वस्तुतः –

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहर्मति।
यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र सिद्धिर्न जायते।।

अर्थात्– जब तक मनुष्य अपनी विशेष प्रकार की साधनायें करता हुआ शक्तिपात का अधिकारी नहीं बनता तब तक उसकी सब साधनायें पुण्य–वर्द्धिकर है। साधना करने के फलस्वरूप चाहे वह व्यक्ति ज्ञान धारण प्रधान क्यों न हो जब तक सिद्ध संगति को प्राप्त नहीं करता और उसका अनुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह संसार से पार नहीं हो सकता।

प्रावाहिक दीक्षायें

प्रवाहान्तरगत होने वाली दीक्षाओं को साम्प्रदायिक दीक्षायें भी कहा जा सकता है। महापुरुष लोग अपनी–अपनी विचार धाराओं को संसार के सामने रखते है। किन्तु शक्ति प्रवाह का उनका मूल स्रोत एक ही स्थान से चलता है। जब मनुष्य उनके प्रभाव से प्रभावित हो करके उस मार्ग का अनुगामी बनता है तो उनको आदि सिद्ध उस आचार्य की शक्ति की प्राप्त होती है जिसको पा करके ही कोई–कोई सुकृती लोग अपने चरम लक्ष्य की ओर बढ़ जाते हैं। अतः परम करुणार्णव श्री गुरुदेव के प्यारे चरण–कमलों को प्राप्त करके उस नित्य चेतन से अपना अकृत्रिम सम्बन्ध स्थापित कर ही लेना चाहिए ताकि साधक प्रयत्न करता हुआ परम श्रेय का भाजन हो जाय और "**स्वयं तीर्णः परान्तारयति**" का अधिकारी बन सके।

□□□

सिद्ध की पहचान

एक बार श्री प्रभुजी श्री मुल्खराज जी व अन्य अनेक सत्संगियों को लेकर के सन् 1926 में हरिद्वार कुम्भ मेले में आये। कुम्भ मेले में हजारों जटाधारी महात्मा थे, उनमें से यह पहचान नहीं की जा सकती थी कि कौन–कौन महात्मा अच्छी पहुँच वाले आये है। श्री मुल्खराज जी ने प्रभुजी से पूछा कि उनमें से कौन महात्मा पहुँच वाला है?

श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया – "बेटा ! जिस–जिस की जैसी उपासना होती है, उतना–उतना ही उस व्यक्ति का तेजो मण्डल बढ़ता चला जाता है। तेज पुंज की उपासना से मनुष्य का तेज बढ़ता है और अन्यान्य उपासनायें करने से वही तेज लालिमा और कालिमा को लिये हुए दिखलाई देता है। शरीर के तेजोमण्डल को देखो कि उनके सिर के आसपास कितना तेजमण्डल है?" उन सभी साधुओं में केवल मात्र चार ही इस प्रकार के सिद्ध पुरुष दिखलाई दिये कि जिनका तेजमण्डल देश भर में फैला दिखाई देता था।

उसके बाद श्री मुल्खराज जी ने श्री प्रभुजी के तेजमण्डल को देखना प्रारम्भ किया तो उनके तेज का आदि–अन्त न पा सके। अन्त में श्री प्रभुजी ने उनको ध्यान से उठा दिया और लाड़ व प्रेम से कहा – "बेटा ! हमसे ही उपाय पूछा और हमारा ही इम्तहान लेना शुरू कर दिया।

("महायोगी की लोकयात्रा" पुस्तक से)

योग सर्वोत्तम यज्ञ है !

'यज्ञो वै विष्णु:' यज्ञ भगवान विष्णु का रूप माना गया है। हर शुभ कर्म या सत्कर्म को यज्ञ कहा जा सकता है। सृष्टि के आदि से ब्रह्मा जी ने मनुष्य को नाना प्रकार के यज्ञों को करने का उपदेश दिया है। गीता के अनुसार कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। मनुष्य स्वभाव से ही सुख की कामना करता है, सुख प्राप्त करने के लिए शुभ कर्मों में प्रवृत्त होना होता है। यज्ञ कर्मजन्य होता है। यज्ञ से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से ही सारे प्राणियों की उत्पत्ति व पालन होता है। इस प्रकार से सृष्टि चक्र में यज्ञ की विशेष भूमिका रहती है। यदि पृथ्वी लोक में वर्षा न हो तो अकाल पड़ जाने के कारण अन्न की कमी से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच जायेगी। इस प्रकार से यज्ञ वर्षा का कारण बन जाता है। वस्तुत: सभी यज्ञ शरीर, मन एव इन्द्रियों से ही सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार से यज्ञ रूपी कर्म के दो विभाग बन जाते हैं – एक यज्ञ जीवन व शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक है तथा दूसरा आत्मोत्थान के लिए। परमार्थ के लिए किये जाने वाले कर्म को आध्यात्म कर्म अथवा कर्मयोग कह सकते हैं। इसका उद्देश्य योग समाधि की प्राप्ति है जो आत्म ज्ञान का एकमात्र कारण है। द्रव्य यज्ञ से लोक में अभ्युदय मिलता है। लौकिक सुख और उन्नति प्राप्त होती है। जबकि आध्यात्म योग से शाश्वत् शान्ति व मुक्ति मिलती है। मनुष्य का परम धर्म यही है कि योग साधना से आत्म दर्शन को पा ले। **'अयं हि परमो धर्म: यत् योगेन आत्म दर्शनम्'**।

गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने कहा है कि द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। मनुष्य को कर्म का शोधन तब तक करते रहना चाहिये जब तक ज्ञान का उदय न हो जाये। ज्ञान के उदय हो जाने के पश्चात् 'विवेक ख्याति' का प्राकट्य हो जाता है। मनुष्य के चित्त की चंचलता अधिक रहती है। प्राणायाम एवं ध्यान योग से तमोगुण और रजोगुण दब जाते हैं। सत्व का प्रकाश चित्त में होने लगता है। कहा जाता है कि सतयुग में मनुष्य स्वाभाविक रूप से योगी विज्ञानी होता था, वह स्वभाव से ही ईश्वर चिन्तन में लगा रहता था, किन्तु युगधर्म के अनुसार सतोगुण का ह्रास होने लगता है। इसलिए मनुष्य की बुद्धि ध्यानपरायण न होकर बहिर्मुखी होने लगी। इसी कारण से मनुष्य विभिन्न प्रकार के यज्ञों में प्रवृत्त होने लगा। बुद्धि में और स्थूलता आ जाने से व्यक्ति यज्ञों से भी उपराम होने लगा और मूर्ति पूजा व स्थूल प्रतीक पूजा में रुचि लेने लगा। अब सतोगुण में कमी आ जाने के कारण ध्यान योग की क्षमता कम हो गयी, वृत्ति बहिर्मुखी रहने लगी। कलियुग के लोगों के लिए तो नाम का ही आधार शेष रह गया। किन्तु नाम के साथ सुमिरन का संयोग नहीं रहेगा तो लाभ अत्यल्प ही होगा।

कर्म की परिभाषा करते हुए योग दर्शन के भाष्यकार भगवान् व्यासदेव जी कहते हैं – **कुशलाकुशलानि कर्माणि**– अर्थात् जिस क्रिया का सम्बन्ध अच्छी या बुरी भावना से हो उसे कर्म कहते है। अज्ञानता में जो कर्म बनते है, उनमें आसक्ति रहने के कारण वे बन्धन में डालने वाले

होते है, किन्तु योगी लोग ध्यानाभ्यासरत रहते है, इसलिए उनके अच्छे या बुरे कर्म नहीं बनते। योग दर्शन का सूत्र है – **कर्माशुक्लाकृष्ण योगिनाम् त्रिविधमितरेषाम्** – अर्थात् योगियों के न तो पुण्य कर्म होते है और न ही पाप के। अर्थात् योगी लोग पाप–पुण्य से सर्वथा परे होते है। सांसारिक लोगों के पाप के पुण्य के तथा मिश्रित कर्म बनते रहते है। गीता का भी वचन है कि –

युक्त: कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्त: काम कारेण फले सक्तो निबध्यते।।

अर्थात् योगी कर्मफल को त्याग करके अखण्ड शान्ति को प्राप्त करता है, किन्तु अयोगी कामनाओं से युक्त होने के कारण फल भोगने के लिए बाध्य होता है। ध्यान योग के बल के कारण योगी के कर्म बन्धन में डालने वाले नहीं होते है। योगी लोग योग यज्ञ करते है इसे ही **आध्यात्म योग** कहते है। उपनिषद् का एक मन्त्र है, जिसके अनुसार यह कहा गया है कि योगी अपने शरीर को यज्ञ की अरणी बना ले तथा प्रणव मन्त्र को उत्तरारणी बना ले। तत्पश्चात् ध्यान रूपी मन्थन के बल से छिपे हुये आत्मदेव का साक्षात्कार कर ले। जैसे अरणी मन्थन करके यज्ञ के लिए अग्नि प्रकट कर ली जाती है, इसी प्रकार से योगी ध्यान रूपी मन्थन से आत्मज्योति को प्रकट करके आत्म का दर्शन प्राप्त करते हैं। ध्यान योग के पूर्व रूप में मन्त्र का जाप करना आवश्यक होता है। गीता में भगवान ने **'यज्ञानाम् जप यज्ञोऽस्मि'** कहकर जप यज्ञ की महिमा को दर्शाया है। योगी लोग प्राण कर्म के द्वारा भी यज्ञ करते है। प्राणायाम के समान कोई तप या यज्ञ नहीं है। ज्ञानपूर्वक श्वास लेना और छोड़ना यज्ञ रूप ही है। प्राण में अपान का हवन करना तथा अपान में प्राण का हवन करना प्राण कर्म है जो गुरुगम्य है। यह सिद्धयोग की साधना के अन्तर्गत आता है, जो आध्यात्म की मुख्य व प्रारम्भिक साधना है। इसमें निरन्तर अभ्यास की आवश्यक्ता होती है। योगी जब समाधि में इष्टदेव में लयता को प्राप्त होता है तो उस समय उसे करोड़ों यज्ञ का फल सद्य मिल जाता है। जो पुण्य ध्यान योग से मिलता है वह और किसी साधन से नहीं मिल सकता। योग समाधि से ज्ञानाग्नि प्रकट होता है। जिस अग्नि में सारे शुभाशुभ कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। जो आत्मज्ञानी है, उसे कोई कर्म करने की आवश्यकता भी नहीं है। कर्म करे तो भी कर्म उसे बन्धन में डालने वाले नहीं होते – **आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय'।**

इसलिए साधक को योग मार्ग का चयन करके समाधि की पराकाष्ठा को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। समाधि रूपी यज्ञ से कोई बड़ा यज्ञ नहीं है। इसी समाधि यज्ञ से परमात्म साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार होता है।

❑❑❑

जो महापुरुष आत्म भाव एवं आत्म चिंतन में लीन रहते हैं वे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी देवी देवता की पूजा उपासना आदि नहीं करते हैं, क्योंकि वे सदैव सर्वत्र अपने निज स्वरुप आत्मा का ही अनुभव करते रहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा का भेद अविद्या एवं माया से उत्पन्न हुआ है तथा कल्पित है। ब्रह्म आत्मा से भिन्न तत्व नहीं है।

गुरुपूर्णिमा के संदर्भ में विशेष

: रचयिता :
द्वारका प्रसाद शर्मा
लखनऊ

(1)

आषाढे पूर्णिमायां भवति नः गुरोरुत्सव दर्शनीयं,
शिष्याः श्रद्धाप्लुता ये दधति हृदये स्वे तच्छ्रिय वन्दनीयाम्।
किं किं विषयं गुरोर्नः परमयशसः किं न स्याद्वर्णनीयम्,
अस्माकं हृदि यः स्थितो गुरुवरः किं परैरीक्षितव्यम्।।

(2)

सान्निध्यं प्राप्य येषां वयमिह कृतास्तैः कृतार्थाश्च धन्याः,
दत्तं मन्त्रममोघमाशु फलदं चत्वारि कामं प्रदम्।
तेषां सद्दिनमद्य साम्प्रतमिदं आयान्तु शिष्याः स्वकैः,
श्रद्धाभक्ति युतै रुपायन वरैः कुर्वन्तु पूजार्चनम्।।

(3)

याति यावत् स्मृति पथं, सद्गुरोः श्रीमुखाम्बुजम्।
साश्रुनेत्रे तावदेव, गलं च गद्गदायते।।

(4)

नो विस्मृतिं याति कदापि तेषां, सौम्याकृतिः सारयुता च वाणी।
गीतासुधा तन्मुखपद्मनिर्गता, अद्यापि चेतांसि प्रफुल्लयन्ति नः।।

(5)

योगस्य यो मूर्तिरिवाभ्यभासत, आह्लादयुक्तः सततं च स्वस्थः।
मुहुर्मुहुरुद्बुधुद्धुध्य शिष्यान्, कुर्वन्तात् जीवनतत्त्वसाधनम्।।

(6)

अस्मद् गुरूणामपि ये हि गुरवः, साक्षात् प्रभावाः प्रभवो बभूवुः।
स्वाक्ष्णा कृतं दर्शनं नैव तेषां, चित्रे हि रूपाकृतिरात्मसात्कृता।।

(7)

अस्मद् गुरूणां परमं गुरुं प्रति, श्रद्धातिरेकाऽविचला च भक्तिः।
आसीच्च तामन्वभवं तु साक्षात्, साष्टांगकायस्य निपातनेन।।

(8)
यदा यदा वै निजस्वार्थपूर्त्यै, संयाच्यमाना वयमास्म तेभ्यः।
तदा तदा स प्रभवो गुरुर्नः, 'कर्त्ता–करण–कारणं' ताश्चकार।।
(9)
महिमा गुरोर्नः कथयेत कविः कथं, गुणानसंख्यान् कतिधान् च संख्ययेत्।
कथं पारये चेतसा च चांचलेन, योगीश्वराणां गुरुतां क्वचिच्च।।
(10)
अहंभावहीनः परभावलीनः, सदैवात्मरमणः परक्लेशकरुणः।
विधोरमृतांशोरपि यः सुशोभनः, स्वनामधन्यः श्री चन्द्रमोहनः।।
(11)
रागादिमुक्तः परदुःखववितः, गुरोरैकभक्तः सदाभ्यासयुक्तः।
कृष्णैकचित्तः व्रजभूमिरक्तः, गीतामृतास्वादरसैककर्षितः।।
(12)
अस्माकं हृदये सदा निवसता के के न क्लेशा हृताः,
तेनैव गुरुणा च किं न स्मरता, पापा अपास्ताः कृताः।
संसारे च महावने विपथगान्, अस्मान्न संस्कारिताः,
संप्राप्यैवमपूर्व गुरुवरं त्वच्चेतो न लज्जायते।।
(13)
सद्गुरुणा येन काः काः कृता न्वनुकूला वारं च वारं कृपाः,
प्रत्यक्षं स्युः परोक्षं वयमुपकृता नैकधा श्री पदेन।
संसारे व्यवहरतो यदि वयं केनापि स्याम उपकृताः,
ऋणिनः स्म प्रतिकर्तुमिव किं तत्कृते किं नैव चेष्टामहे।
(14)
यद्येवं ननु संविचार्य मनसि किंचित्तु चिन्तामहे,
पश्यामः स्वत एव ननु कियत्पापाचारा वयम्।
कल्याणं स्वकमेव कर्तुमिह जाता वयं नो क्षमाः,
क्षन्तव्या नोऽपराधास्तदपि श्री पदैः करुणार्णवैर्नित्यशः।।
(15)
दाता यः करुणापरः स्वयमिह किं सन्निनिधुर्भवेत्,
दत्तं येन समस्त वस्तु किमतः संयाच्यमानः कथम्।
सर्वज्ञः प्रभुरेव ननु स इच्छति सदा श्रेयांस्यभीष्टानि नः,
आज्ञप्तं तेन यद्यत् किमपि कं कं तत्पूर्त्यै प्रयत्नं कुरु।।

संस्कृत पद्यों का हिन्दी रूपान्तर

(1)
आषाढ़ी पूर्णिमा में निज गुरुवर का उत्सवादिक मनोहर,
श्रद्धायुत शिष्य जन वे हृदय धरकर वन्द्य सुषमा प्रभु की।
क्या क्या कह दूँ प्रभुगुणगण में क्या नहीं वर्णनीय,

(2)
पाकर सामीप्य विमल सद्गुरु का धन्य है हम कृतार्थ,
जिनने है मंत्र बख्शा फलद जो है चार का और साद्यः।
आया उनका सुदिवस यह है इस समय शिष्यजन है,
आओ श्रद्धा सुमन निज ले अर्चना हेतु गुरु के।।

(3)
जब भी स्मृति पथ पर आता, श्री सद्गुरु का मुखकमल है।
तब ही झरते अश्रु–नेत्र से, कण्ठ हुआ जाता गद्गद है।।

(4)
नहीं भूल पाते हम उनको कभी भी, सौम्याकृति और सरसारवाणी।
गीता–सुधा जो मुख से सुनी हुई, प्रफुल्लित किये चित्त को आज भी है।।

(5)
स्वयं योगमूर्ति प्रतिभासमान वे, आत्मारमण और आह्लादयुत थे।
उद्बोध शिष्यों करते पुनः पुनः, तुम भी करो जीवन तत्व साधन।।

(6)
गुरुवर हमारे के गुरुजी रहे जो, प्रभाव अतिशय रहा उन प्रभु का।
दर्शन हुआ है न प्रत्यक्ष उनका, चित्रों से रूपाकृति आत्मसात् हुई।।

(7)
गुरुवर हमारे की निज के गुरु प्रति, अतीव श्रद्धा व भक्ति अटूट थी।
मैंने जिसे स्वानुभव में भी देखा, स्वगुरुपादपद्मों में साष्टांगनति से।।

(8)
जब जब कभी हम निज स्वार्थ पूर्ति हित, उनसे स्वहित में कुछ मांगते थे।
तब तब हमारे गुरुपाद स्वगारुहित, 'कर्ता–करण–कारण' वे यों कहते थे।।

(9)
गुरुवर की महिमा कवि कौन क्या कहे, असंख्य गुणगण गणना करे कौन।
इस डोलते चित्त से क्या कहेगा, योगीश्वरों की गुरुता–महत्ता।।

(10)
अहंता रहित वे, परमारत थे, आत्मारमण वे परक्लेशहर्ता।
सुधाकर की सुषमा से बढ़कर रहे वे, श्री चन्द्रमोहन हुए नागाश्रम।।
(11)
रागादिकों से सदा मुक्त थे वे, परदुःखों से द्रवित थे सदा ही।
सदानिष्ठ गुरु के प्रति वे रहे थे, सदा साधनाभ्यास रत भी रहे थे।।
श्रीकृष्ण में भक्ति उनकी रही थी, ब्रजभूमि उनकी परमप्रिया थी।
गीता की अमृतमयी रससुधा पर, अनुरक्त वे थे सतत् भक्तियुति से।।
(12)
दिल में बसकर उन्होंने क्लेशों को किन किन को हारा नहीं है
पथभ्रष्ट थे हम महारण्यभव के संस्कार से युक्त किया क्या नहीं है।
किया याद जब जब था हमने उन्हीं को पापों को किनको न जारा नहीं है,
पाकर अनूठे गुरुवर को ऐसे क्या मन तुम्हारा लजाया नहीं है।।
(13)
क्या क्या उन सद्गुरु ने की और कर रहे तुम पर कृपा वर्षा सदा,
प्रत्यक्षीकृत थी या परोक्ष ढिंग से उपकृत हुए हम हमेशा उन्हीं से।
संसारी–व्यवहार में यदि कभी हम होते हैं उपकृत कभी,
हम उनसे ऋणमुक्ति हित प्रतिकृति क्या हैं न करते सभी।।
(14)
ऐसा ही यदि सोचकर हम स्वयं कुछ चिन्तन व मन्थन करें,
पायेंगे निज को कि हम हुए पापापचारी स्वयं ही।
अपने ही कल्याण हेतु हम ही असमर्थ हैं हो रहे,
तब भी कर देते क्षमा श्रीगुरुवर करुणा के सागर हैं वे।।
(15)
जो दाता स्वयं ही क्या चाहें किसी अन्य से,
जिसने दी हमको समस्त निधि हो वह माँगता क्या रहे।
वे सर्वज्ञ समर्थ हैं प्रभु गुरु श्रेयस हमारा चाहते,
जो आज्ञा दी उन्होंने जिस जिस किसको भी पूरा करें यत्न से।।

□□□

दिव्य प्रसाद

प्रेषक – पूर्णचन्द पंत शास्त्री

आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी माता गोदावरी जी को ध्यानावस्था में प्रायः समय समय पर प्रसाद देते रहते हैं। कभी पुष्प प्रसाद, कभी पुष्पमाला और कभी मेवे या फल का प्रसाद। एक बार जब वे ध्यानावस्था में थीं तो दयासागर श्री गुरुदेव जी उनके सम्मुख प्रकट हो गये। उस समय उनका तेज एवं सौन्दर्य वर्णनातीत था। उन्होंने मन्द–मन्द मुस्कुराते हुए माता जी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और एक पुड़िया पकड़ाते हुए कहा –

'लल्ली ! आज मैं तुम्हें विशेष प्रसाद देने आया हूँ। लो इसका प्रेमपूर्वक सेवन करो, आश्रम में जो हमारे अमुक–अमुक बच्चे हैं उन्हें भी इसमें से थोड़ा–थोड़ा प्रसाद दे देना। इतना कहकर गुरुदेव अन्तर्ध्यान हो गये। कुछ समय बाद माता जी का ध्यान खुला तो उन्होंने देखा कि प्रसाद की एक बड़ी सी पुड़िया उनके सामने पड़ी थी। उन्होंने गद्–गद् होकर उस दिव्य प्रसाद का सेवन किया और जिन जिन का नाम श्री गुरुदेव ने लिया था, उन सभी भाई–बहिनों को थोड़ा–थोड़ा बाँट दिया।

दिव्य गंध और दिव्य रस का साक्षात्कार

ध्यान की प्रगाढ़ता के साथ–साथ कुछ समय बाद माता जी को दिव्य गन्ध का साक्षात्कार होना आरम्भ हो गया। आरम्भ में ध्यान से उठने के पश्चात् वे कुछ समय तक अपने चारों ओर बड़ी मनमोहक सुगन्धि फैली हुई अनुभव करती थीं। बाद में वह सुगन्ध घण्टों तक बनी रहने लगी। धीरे–धीरे वह सुगन्ध लगातार 10–12 घण्टे तक बनी रहने लगी। वे जहाँ भी जाती थीं, वहीं उन्हें उस अलौकिक सुगन्धि का अनुभव होता था और वे उस सुखद सुगन्धि के नशे में मस्त रहने लगीं। उस स्थिति में वे ज्यों ही ध्यान में बैठतीं तो बैठते ही ध्यानस्थ हो जातीं। एक दिन इसी प्रकार ध्यान में बैठे–बैठे अचानक उनकी खेचरी मुद्रा लग गयी अर्थात् उनकी जिह्वा उलटकर कण्ठकूप में चली गयी। जिससे साँस लेने में कुछ कठिनाई होने से माता जी घबराईं। उन्होंने गुरुदेव का स्मरण किया तो वे तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने माताजी के मुँह में अंगुली डालकर जीभ को सीधा करके यथास्थान रख दिया। और बड़े प्यार से बोले – मुनिया घबराया मत करो, श्री प्रभुजी की तुम पर बहुत कृपा हो रही है। इसके कुछ महिने बाद उन्हें दिव्य रस का साक्षात्कार होना आरम्भ हो गया। वे बताया करती थीं कि ध्यानावस्था में कभी–कभी ऐसा लगता है कि बर्फ की तरह शीतल और अत्यन्त मधुर कुछ जल की सी बूंदें ऊपर से गिरकर मेरे गले में उतर जाती हैं। मुझे पता नहीं चलता कि वह क्या चीज है, पर आनन्द बहुत आता है।

शिवरूप में महाप्रभु जी के दर्शन

एक सप्ताह से माता जी के अन्दर ध्यान का नशा हर समय छाया रहता था और इस कारण वे आनन्द विभोर रहा करती थीं। एक दिन शाम के समय आश्रम के ध्यान कक्ष में जब वे ध्यान में बैठी तो बैठते ही ध्यानस्थ हो गयी। ध्यान में उन्हें श्री प्रभुजी के शिवस्वरूप में दर्शन हुए। वे एक लम्बा त्रिशूल धारण किये हुए थे और उनके शरीर में ऊपर से नीचे तक सर्प ही सर्प लिपटे हुए थे। एक सर्प कन्धे में यज्ञोपवीत की तरह लिपटा हुआ था, एक सर्प कमर में मेखला के रूप में लिपटा हुआ था, एक भयकर सर्प गले में फन फैलाये बैठा हुआ था और वह इधर-उधर देखकर फुंकार मार रहा था। नीचे पृथ्वी पर उनके चारों ओर सर्प ही सर्प घूमते हुए नजर आ रहे थे। यह दृश्य देखकर माता जी अत्यन्त भयभीत हो गयी और उनका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो गया। यह देख प्रभुजी को दया आ गयी। उन्होंने अपना वह रूप हटा दिया और अपने साधारण रूप में दर्शन देकर माता जी को आश्वस्त कर दिया।

कुछ देर के बाद आनन्दकन्द श्री गुरुदेव ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा में माता जी को दर्शन दिये। उन्होंने तीन बार थपकी देकर उन्हें आशीर्वाद दिया और गले से मोतिया की पुष्पमाला उतार कर उन्हें पहना दी। फिर पास में बैठे हुए इस लेखक पर उनकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने अत्यन्त करुणापूर्वक निहारते हुए इसे जीवन तत्व साधन के पूरे नौ आसन कराये। इतने में उनका ध्यान खुल गया। अगले दिन माता जी ने अपना यह ध्यानानुभव मुझे बताया। जिसे सुनकर मेरा हृदय गुरुदेव की दयालुता का स्मरण करते हुए गदगद हो गया। वास्तविकता यही थी कि कई दिनों से मेरा स्वास्थ्य खराब चल रहा था और मैं आसनों की ओर से लापरवाह था। गुरुदेव की अन्तर्प्रेरणा से मैंने उसी दिन जीवन तत्व साधन करना आरम्भ किया था। उधर माता जी दरबार में बैठी हुई ध्यानावस्था में प्रभुजी की उपरोक्त कृपालीलाओं का दर्शन कर रही थीं, मैं इधर अपने कक्ष में ठीक उसी समय आसन कर रहा था। जीवन तत्व साधन के प्रभाव से मुझे उसी दिन ही काफी लाभ अनुभव हुआ। अतः यह सत्य है कि दया सागर श्री गुरुदेव ने ही उस दिन मुझसे आसन करवाये थे।

ध्यान में तीन कागजी नीबू देना

माता जी नीबू से बड़ा परहेज करती थीं। उनकी धारणा थी कि नीबू का सेवन करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा। उनकी इस आशंका को दूर करने के लिए दयानिधि श्री गुरुदेव ने एक दिन ध्यान में उन्हें प्रसाद रूप में तीन बड़े-बड़े कागजी नीबू दिये और कहा कि तुम ये तीनों खा लेना फेंकना बिल्कुल नहीं। इतना कहकर वे अन्तर्ध्यान हो गये। इसके साथ ही माता जी का ध्यान भी टूट गया। उन्होंने आँख खोलकर सामने देखा तो वे तीनों नीबू उनके आगे रखे हुए नजर आये। उन्हें देखकर माता जी एक बार तो चौंक पड़ीं, फिर अगले ही क्षण उन्होंने गदगद होकर उन तीनों नीबुओं को उठाकर अपने हृदय से लगाया, मन ही मन श्री प्रभुजी को नमन किया और मस्ती से झूमती हुई भोजनालय में चली गयी। वहाँ उन्होंने दो नीबू तो सम्भाल कर रख दिये और तीसरे नीबू को उसी क्षण काटकर पानी में निचोड़ा और उसमें हल्का सा नमक मिलाकर पी गयी। नीबू पीने के बाद उन्होंने बड़ी ताजगी अनुभव की। उन्हें प्रायः पेट में गैस, साँस में रुकावट तथा

घबराहट आदि शिकायतें रहा करती थी, किन्तु आज सारा दिन एकदम तरोताजा रही। कुछ दिन तक उन्हें किसी प्रकार का भी शारीरिक कष्ट नहीं हुआ। शरीर में हर समय स्फूर्ति बनी रहती थी और मन प्रफुल्लित रहता था।

माता जी ने शेष दो नीबुओं में से एक तो अपने पुत्र डॉ. पुष्पराज के लिए फ्रिज में संभालकर रख दिया और एक नीबू आश्रमवासी गुरु बहिन विद्याकौशल को खाने को दिया। विद्याजी को नीबू अनुकूल नहीं बैठता था तथा उसके सेवन से उन्हें शरीर में दर्द हो जाता था। अतः वे नीबू का सेवन नहीं करती थीं। किन्तु आज वे प्रभु प्रसाद समझकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक पूरा नीबू पानी में निचोड़कर एवं उसमें नमक मिलाकर एक बार में ही पी गईं। आज उन्हें नीबू के सेवन से किसी प्रकार का विकार होने के बजाय शरीर और मस्तिष्क में हल्कापन और स्फूर्ति का अनुभव होता रहा।

उन्होंने उस नीबू के बीज निकालकर आश्रम की पुष्पवाटिका में उगा दिये, उन बीजों से तीन ही पौधे तैयार हुए। उनमें से एक पौधे में गत दो वर्ष से फल भी बराबर आ रहा है। इस पौधे में वर्ष में दो बार फल आता है। फल भी आकार में बड़े और रस से भरपूर होते हैं। ये पौधे गुरुदेव की भक्तवत्सलता के स्मृति चिन्ह के रूप में आज आश्रम की पुष्पवाटिका की शोभा बढ़ा रहे हैं।

हाथ में चुभे हुए काँटे को निकालना

एक बार माता जी के हाथ में अचानक कहीं से काँटा चुभ गया। जिससे कुछ दिन तक तो उन्हें कभी-कभी हल्का सा दर्द होता रहा। बाद में हाथ सूज गया और काँटे वाले भाग में मवाद पड़ जाने से उन्हें बड़ा कष्ट रहने लगा। इस कष्ट के कारण वे एक सप्ताह तक ध्यान में नहीं बैठ सकीं।

एक सप्ताह बाद जब वे ध्यान में बैठी तो बैठते ही उनका मन एकाग्र हो गया और परम करुणार्णव आनन्दकन्द श्री प्रभुजी उनके समक्ष प्रकट हो गये। वे बड़े प्यार से बोले – गोदावरी अपना दर्द वाला हाथ हमें दिखाओ, जरा हम भी तो देखें कि यह कैसा दर्द है? जो इतने दिनों से ठीक नहीं हो रहा है। माता गोदावरी जी ने अपना दाँया हाथ आगे बढ़ा दिया। तब गुरुदेव ने दर्द वाले भाग को धीरे से मला और काँटा निकालकर उनकी हथेली पर रखते हुए कहा – लो यह रहा तुम्हारे दर्द का कारण, जिसे हमने बाहर निकाल दिया है। अब बिल्कुल दर्द नहीं होगा।

यह कहकर गुरुदेव अदृश्य हो गये। इधर माता जी का ध्यान भी खुल गया था। उन्होंने हाथ की ओर देखा तो वह काँटा उनकी हथेली पर अब भी ज्यों का त्यों पड़ा था, तब उन्होंने दर्द वाले भाग को दबाया तो दर्द का नामोनिशान नहीं रहा था। सूजन भी स्वतः ठीक हो गयी थी।

अद्भुत चमत्कार

11 मई 2000 को अपने नैत्यिक कार्यक्रम के अनुसार सायं 6 बजे माता गोदावरी जी अपने घर में व पूजा कक्ष में ताला लगाकर ध्यानाभ्यास के लिए आश्रम चली गयी थी। रात्रि लगभग 8.30 बजे जब वे लौटी तो यह देखकर आश्चर्य चकित हो गयी कि पूजा कक्ष में ताला ज्यों का त्यों लगे रहने के बावजूद भी अन्दर बिजली का बल्ब जल रहा था। धूप और अगरबत्ती जल रही थी और प्रभुजी के स्वरूप के आगे एक दौने में मेवे का प्रसाद रखा था। प्रभुजी की इस लीला को

देखकर माताजी गद्गद् हो गयी, उन्होंने जल्दी-जल्दी आरती पूजन किया और प्रभुजी के द्वारा दिये उस दिव्य प्रसाद को बड़े भक्ति भाव से ग्रहण किया।

रजप्रसाद सेवन कराकर मरणासन्न वृद्ध को रोगमुक्त करना

22 मई 2000 को सायंकालीन ध्यानाभ्यास में माताजी ने ध्यान में देखा कि उनके पड़ोस में एक वृद्धा महिला को मरणासन्न अवस्था में देखकर उसके घर के लोगों ने उसे चारपाई से नीचे उतार दिया था। इतने में उसे आनन्दकन्द गुरुदेव के दर्शन हुए। वे तेज से झिलमिला रहे थे और लम्बे-लम्बे डग भरते हुए बड़ी तेजी से उसके घर में प्रविष्ट हुए। उस वृद्धा के निकट पहुँचकर उन्होंने आशीर्वाद देते हुए उस पर अपनी हथेली से तेज की धारायें प्रवाहित की। जिससे उसने आँखें खोली और एकदम उठकर बैठ गयी। दयासागर गुरुदेव ने फिर माता गोदावरी को आदेश दिया कि तुम उसे सिद्धगुफा का रज प्रसाद सेवन कराओ, वह बिल्कुल स्वस्थ्य हो जायेगी। इतने में उनका ध्यान खुल गया।

बहिन गोदावरी अगले दिन रज प्रसाद लेकर वहाँ गई। उस समय वह वृद्धा चारपाई पर लेटी हुई थी। वह बोल कुछ नहीं पा रही थी। उसकी देखरेख के लिए एक युवती उसके निकट कुर्सी पर बैठी हुई थी। उसने खड़े होकर अभिवादन किया और उन्हें बैठने को कुर्सी दी। माता गोदावरी ने उससे रोगी का हाल पूछा तो उसने बताया -

कल तो इनके बचने की कोई आशा नहीं थी। उनकी मरणासन्न स्थिति देखकर हमने इन्हे चारपाई से नीचे उतार दिया था। प्रभुकृपा से कुछ समय बाद इन्होंने अचानक आँखें खोल दी और खुद उठ खड़ी हुई। इन्होंने पीने को जल माँगा। हमने इन्हे जल पिलाया और दुबारा चारपाई पर लिटा दिया। तब से लेकर अब तक इनकी हालत में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। माता गोदावरी जी ने गुरुदेव के आदेशानुसार उस वृद्धा को रज प्रसाद का सेवन करा दिया और अपने घर लौट आयीं। सर्वशक्तिमान श्री गुरुदेव के आशीर्वाद से वह वृद्धा दो-तीन दिन में पूरी तरह स्वस्थ्य हो गयी।

गुरुदेव द्वारा ध्यान में दूध पिलाना

उन दिनों माताजी का स्वास्थ्य खराब चल रहा था, अतः डाक्टर ने कुछ दिन के लिए उनका भोजन बन्द कर रखा था। अन्न के स्थान पर उन्हें दूध, साबूदाना तथा मीठे रसीले फलों का सेवन करने को कहा गया था। किन्तु माताजी को दूध पीने में पहले से ही अरुचि थी। अतः घर के लोगों के बार-बार कहने पर भी वे दूध नहीं पीती थी। बीमारी के कारण उन दिनों वे ध्यान में नहीं बैठ पा रही थी। अतः इसी बीच श्री गुरुदेव महाराज ने स्वप्न में उन्हें दर्शन दिये। वे बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे। उनके एक हाथ में पीतल का एक बड़ा गिलास था और दूसरे हाथ में उसी प्रकार का बड़ा सा लोटा था, जो दूध से भरा हुआ था। वे कुछ देर तक दूध को गिलास से औटाते रहे और फिर दूध का भरा गिलास माताजी को पकड़ाते हुए बोले - 'मुनिया! लो हमारे हाथ का दूध पी लो। अब तुम शीघ्र स्वस्थ्य हो जाओगी।' दूध का गिलास हाथ में लेकर माताजी मन में सोच रही थी कि दूध तो मुझसे एक घूँट भी पिया नहीं जाता, अब इतना बड़ा गिलास कैसे पी पाऊँगी? मन में ऐसा

विचार करते हुए उन्होंने धीरे–धीरे दूध पीना आरम्भ किया। दूध पीते हुए वे गुरुदेव को बार–बार निहार रही थी। इतने में गुरुदेव मधुर वाणी में बोले – लल्ली ! जल्दी से गिलास खाली करो। लोटे का यह सारा दूध भी तुमको ही पीना है। तब गुरुदेव की आज्ञा का पालन करती हुई माताजी ने एक साँस में ही सारा दूध पीकर सारा गिलास खाली कर दिया। गुरुदेव ने उसे भरा तो वे शीघ्र ही उसे भी पी गयी। तब लोटे में बचे हुए दूध को गिलास में डालते हुए गुरुदेव बोले – बस इतना सा दूध और बचा है। इसे भी पी जा। गुरुदेव की आज्ञा से माताजी उसे भी पी गई। इतने में माताजी की निन्द्रा भंग हो गयी। वे अर्द्धनिद्रित आँखों से चारों ओर देखने लगी कि कहीं गुरुजी यहीं तो नहीं बैठे हैं? उन्हे पेट में अब भी भारीपन महसूस हो रहा था। और उन्हें ऐसा लग रहा था कि उन्होंने बहुत अधिक दूध पी लिया है। कुछ क्षण बाद ही उन्हे यह विश्वास हुआ कि उन्होंने स्वप्न में ही दूध पिया है।

इस घटना के बाद उन्हे दूध अच्छा लगने लगा। तब से लेकर वे नित्यप्रति सुबह शाम दोनों समय दूध का सेवन करती हैं। इस घटना के दो तीन दिन बाद ही उनका रोग भी दूर हो गया।

ध्यान में ही गुरुदेव द्वारा अपने साथ कुम्भ स्नान कराना

1998 में हो रहे कुम्भ पर्व पर स्नान के लिए योग सिद्धाश्रम मण्डी से सम्बन्धित कुछ भाई–बहिन बड़े उत्साहपूर्वक यात्रा की तैयारी कर रहे थे। उन्हें देखकर माताजी के मन में भी वहाँ जाने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो गयी। उन दिनों उनका स्वास्थ्य विशेष ठीक नहीं चल रहा था। साथ ही वृद्धावस्था भी थी। अतः कोई भी व्यक्ति उन्हें अपनी जिम्मेदारी पर साथ ले जाने को तैयार नहीं हुआ। जिससे माताजी को बड़ी निराशा हुई। कुम्भ के मुख्य पर्व वाले दिन माताजी ने प्रातः चार बजे अपने घर के पास स्थित बावड़ी में स्नान किया। स्नान करते समय उनके मन में बार–बार यह विचार आ रहा था कि इस समय मेरे सभी गुरुभाई बहिन हरिद्वार में कुम्भ स्नान का आनन्द ले रहे होंगे; किन्तु मैं अभागिन वहाँ जा नहीं सकी।

स्नान के उपरान्त अपने पूजा कक्ष में ज्योति जलाकर एवं सूक्ष्म आरती करके वे ध्यान में बैठ गयी। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव की कृपा से बैठते ही उनका मन एकाग्र हो गया। और वे ध्यान में ही हरिद्वार पहुँच गयी। वहाँ उन्हे पतित पावनी गंगाजी के दर्शन के साथ–साथ उनके दोनों ओर मीलों तक फैले हुए कुम्भ मेला क्षेत्र में लाखों श्रद्धालु नर–नारियों और साधु–संतों के दर्शन हुए। उन साधुओं की संख्या भी लाखों में थी। उनमें कुछ महात्मा तो बड़े तेजस्वी दिखायी दे रहे थे। तब माताजी की नजर स्नान घाटों की ओर गयी। प्रत्येक घाट पर लाखों की संख्या में स्नानार्थी एकत्रित हो रहे थे। हर की पौड़ी पर अन्य घाटों की अपेक्षा अधिक भीड़ थी। सभी स्नानार्थी अपनी–अपनी टोलियों में आये हुए थे और एक–दूसरे का हाथ पकड़कर पंक्ति में चल रहे थे एवं बारी–बारी से स्नान कर रहे थे। ज्यों ही माताजी के मन में स्नान करने की उत्सुकता हुई तो यह सोचकर वे बड़ी भयभीत हो गयी कि ओह ! मैं तो बिल्कुल अकेली हूँ, किस प्रकार मैं इस अथाह भीड़ को पार करके गंगाजी तक पहुँच पाऊंगी और वापस लौटूंगी। उन्होंने स्नान का विचार ही त्याग दिया। दूसरे ही क्षण उनके ध्यान का नजारा ही बदल गया और यह दृश्य उनके सामने उपस्थित हुआ।

वे देखती है कि – वे नील धारा के निकट चण्डी पर्वत पर एकान्त स्थान पर शान्त भाव से बैठी हुई कुम्भ मेले का नजारा इतनी तन्मयता से देख रही है कि उन्हें अपने शरीर तक की सुध-बुध नहीं थी। उन्होंने हाथियों पर जाते हुए मंडलेश्वरों, महामण्डलेश्वरों और उनके अनुयायी नागा महात्माओं की शोभा यात्रा तथा उनके शाही स्नान का अनुपम दृश्य देखा। उसके बाद देश के कोने-कोने से आये हुए श्रद्धालु भक्तजनों का स्नान आरम्भ हुआ। उस समय उन सभी सन्तजनों एवं गृहस्थी भक्त जनों के आह्लादपूर्ण जयघोष हरहर गंगे, हरहर महादेव की ध्वनि से सारा आकाश मण्डल गूँज उठा। चारों ओर यही ध्वनि गूँज रही थी। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं सुनायी दे रहा था। माताजी प्रगाढ़ ध्यान में लीन थी।

इतने में उन्हें गुरुदेव की आत्मीयतापूर्ण आवाज सुनायी दी – गोदावरी मुनियां। आँखें खोलो। यह सुनकर माताजी आँखे खोलकर इधर-उधर देखने लगी और दूसरे ही क्षण उन्होंने पुन: आँखें बन्द कर ली। तब परम कल्याणधन सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने उनके सिर पर प्यार से एक थपकी लगाते हुए कहा – लल्ली! तुम्हारी कुम्भ स्नान की इच्छा थी, अत: हम तुम्हें पर्व स्नान कराने आये हैं। उठो और शीघ्रता से हमारे साथ चलो। तुम हमारा हाथ मजबूती से पकड़े रहना, तुम मुँह से कुछ बोलना नहीं, तुम्हें कोई देख भी नहीं सकेगा। माताजी ने ऐसा ही किया और दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि वे हर की पौड़ी पर स्थित है। गुरुदेव शीघ्रता से स्नान करने को तैयार हुए और उन्होंने माताजी को भी स्नान करने का आदेश दिया। उन्होंने पहले स्नान किया और फिर माताजी का हाथ पकड़कर उन्हें गोता लगवाया। ज्यों ही वे जल से बाहर निकलने लगी तो परम कौतुकी गुरुदेव ने अंजलि भर-भर कर उन पर तीन चार बार गंगाजल की बौछार की। दोनों ने वस्त्र बदल लिये, तो श्री गुरुदेव बोले – अब हमें किसी और बच्चे के पास पहुँचना है। इसलिए तुम हमें प्रणाम करके आशीर्वाद ले लो। ज्यों ही माताजी ने प्रणाम किया तो श्री गुरुदेव ने पीठ थपथपाकर उन्हें आशीर्वाद दिया और आशीर्वादात्मक मुद्रा में अपना दायाँ हाथ ऊपर उठाते हुए तथा मंद-मंद मुस्कराते हुए ऊपर आकाश में कुछ क्षण के लिए स्थित हुए और फिर बड़ी तेजी से चण्डी पर्वत की ओर चले गये। जब तक श्री गुरुदेव आकाश में नजर आते रहे तब तक माताजी आनन्दविभोर होकर उन्हें निहारती रहीं और जब वे दृष्टि से ओझल हो गये तो माताजी बड़ी व्याकुल सी गयी। इसी व्याकुलता में उनका ध्यान खुल गया। इस प्रकार भक्तवत्सल श्री गुरुदेव जी ने माता गोदावरी जी की कुम्भ स्नान की हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण किया।

■ ■ ■

सुख-दुःख कर्म का फल नहीं है। कर्मों के फल के रूप में तो परिस्थिति प्राप्त होती है। उसमें सुख और दु:ख तो मनुष्य के भावानुसार होते हैं। विवेकी मनुष्य परिस्थिति से अतीत जीवन प्राप्त करने के लिए उनसे असंग हो जाता है।

गुंजन

विजय सिंह

ब्रह्म, ब्रह्माण्ड में सर्वत्र जड़–चेतन में व्याप्त है। ब्रह्म का निष्क्रिय स्वरूप शास्त्रों में बताया गया है। परमात्मा परिपूर्ण चैतन्य है। सर्व जीवों में परमात्व–तत्व की व्याप्ति है। सभी जीव परमात्मा के ही हैं। गीता में –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणी प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

भगवान ने सब जीवों को अपना सनातन अंश बताया है।

भाव से, भजन से, परमात्मा के भगवत् स्वरूप का प्राकट्य हुआ करता है। जीवोद्धार के लिये परमात्मा सद्गुरु सत्ता के रूप में अवतरित हुआ करते हैं। परमकल्याण ही जिसका स्वरूप है। जो जीव को अपनी अहैतुकी कृपा से परमात्मा का दर्शन कराके उसे परमात्मा–स्वरूप में अवस्थित करा देते हैं। श्री सद्गुरु जी का कथन है–"देखो! यह हमारा शरीर सद्गुरु तत्व नहीं है। सद्गुरु–तत्व तो शरीरों का वरण करके लोगों को परमात्मा तक पहुँचाने का कार्य किया करते हैं भगवान पतंजलि ने क्या परिभाषा दिया है सद्गुरु का? 'पूर्वेषापि गुरुः कालेनान् अवच्छेदात्"। गुरु परम ईश सत्ता का नाम है जो अकाल है। अतः ऐसे तत्वदर्शी महापुरुषों के नाम रूप में क्यों न भिन्नता रखते हों परन्तु यथार्थतः सभी वही परम सत्ता से जुटे हुये एक है। हम सभी उन्हीं का वन्दन करते हैं–किसी संत के हृदय तंत्रिका पर गूंज उठा गुंजन –

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीर अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भव भारी।।
सूरत निज सोऽहं, कलिमलते खोहं,जनमन मोहन छवि भारी।
सिद्धाश्रम वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।
अनुभव गम्भीरा, अलख फकीरा, मति के धीरा, अवतारी।
योगेश्वर अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।
हिमालय से आयो, योग सिखायो, सवाई आसन मारी।
श्री चन्द्रमोहन नमामि, हे अन्तर्यामी, जग–जीवन–तत्व प्रचारी।
हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहरी उपकारी।
सिद्धयोग सिखायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, कृपा करो प्रणधारी।
जय सद्गुरु देवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।।

अनुरागी मन में सदैव सद्गुरु का निवास हुआ करता है। अनुरागी के साथ वे हर पल रहते हैं। बुद्धि में प्रकाश कर साधक का मार्गदर्शन करते हैं। जो सद्गुरु प्रदत्त मंत्र का निष्ठापूर्वक, अनुराग पूर्वक जाप करता रहता है, वह साधक सद्गुरु के स्थूल सानिध्य में हो अथवा कोसों दूर, सद्गुरु सदैव उसके अन्तःकरण में विराजते हैं। हृदय में वस्तुतः अनुराग होना चाहिए। संत की हृदय वीणा झंकृत हो गाती है–

भव सागर–तारण कारण हे, भवार्णव–बन्धन खण्डन हे।
शरणागत किंकर भीत मने, गुरुदेव दया कर दीन जने।।

हे गुरुदेव! यह आपका बालक अत्यन्त भयभीत है। आप दयासागर हैं, दया करिये। आप ही जन्म–मरण के बन्धन को काटने वाले सामर्थी हैं। भव सागर से एक मात्र पार करा सकने का सामर्थ्य भी आप में ही है।

हृद–कन्दर–तामस–भास्कर हे, तुम विष्णु प्रजापति शंकर हे।
परब्रह्म परात्पर वेद भणे, गुरुदेव दया कर दीन जने।।

हे प्रभो! आपने इस जन पर दया करिए। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। वेद आप को परात्पर ब्रह्म बताता है। हमारे हृदय गुफा के गहन अंधकार को मिटाने वाले एक मात्र सूर्य आप ही हैं।

मन–वारण–कारण अंकुश हे, नर त्राण करे हरि चाक्षुष हे।
गुण–गान परायण देवगणे, गुरुदेव दया कर दीन जने।।

इस चंचल मन को आप अपना कर वशवर्ती करलें, आपके ही कृपा कटाक्ष से जीव को सर्व संकट से छुटकारा मिलता है। प्रभो! देवता, ऋषिगण सदैव आपकी कीर्ति गाथा गायन करते रहते हैं। नाथ! इस दीन–हीन अपदार्थ पर भी कृपा करें।

कुल–कुण्डलिनी तुम रंजक हे, चित्–जड़ ग्रन्थी विदारण कारण हे।
महिमा तव गोचर शुद्धमने, गुरुदेव दया कर दीन जने।।

अनन्त काल से सोई पड़ी महाकुण्डलिनी को खेल–खेल में जागृति प्रदान करन हारे, प्रभाव स्वरूप षट–चक्र भेदन एवं चिद्–जड़ के भेद को प्रकट करने वाले प्रभु! आप ही हैं। आपकी महिमा विशुद्ध मन वाले साधक थोड़ा–बहुत अनुभव कर पाते हैं। मैं तो साधनाहीन मात्र आपके आश्रित हूँ, हे प्रभो! इस दीन पर कृपा करें।

अभिमान–प्रभाव–विमर्दक हे, अति हीन जने तुम रक्षक हे।
मन–कम्पित–वंचित–भक्ति धने, गुरुदेव दया कर दीन जने।।
रिपुसूदन मंगलनायक हे, सुख–शान्ति–वराभय दायक हे।
भव–ताप हरे तव नाम गुणे, गुरुदेव दया कर दीन जने।।

तव नाम सदा सुख–दायक हे, पतितावम–मानव पावक हे।
मम मानस चंचल रात्रि दिने, गुरुदेव दया कर दीन जने।।
जय सद्गुरु ईश्वर प्रापक हे! भव रोग–विकार विनाशक हे।
मन लीन रहे तव श्री चरणे, गुरुदेव दया कर दीन जने।।

प्रभो! आप अहंकार के प्रभाव से बचाने वाले हैं, मुझ अपदार्थ भक्तिहीन पर दया करें। बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं से बचाने वाले आप परम मंगलकारी हैं। सुख–शांति और वरों के दाता हैं। आपके नाम के स्मरण मात्र से पतितों का उद्धार होता है। मेरा मन स्थिर नहीं रहता। हे सद्गुरुदेव! इस दीन पर दया करिये। आप ही एक मात्र ईश्वर हैं। भव रोगों से त्राण देने वाले हैं। ऐसी कृपा करिये नाथ! कि इस पामर का मन सदैव आपके चरण कमल के चिंतन में लीन रहने लगे। गुरुदेव! आपके कृपा करने पर ही इस दीन–हीन का उद्धार सम्भव है।

❑❑❑

सबका सदा चाहो परम कल्याण !

पर–हित को निज अहित मानता, पर–विकास को जो निज नाश।
पर–यश को निज अयश मानता, पर–उन्नति को अपना ह्रास।।
पर–सुख को निज दुःख मानता, पर–पूजन को निज अपमान।
पल–पल पाप कमाता ऐसा मानव अति दुर्मति, अज्ञान।।
रोग–भोग, निन्दा–स्तुति, अनहित–हित, जय–हार, मान–अपमान।
मिलते सब, होता जैसा निज कर्मजनित प्रारब्ध–विधान।।
कोई कर सकता न हमारा बिना कर्म के कुछ नुकसान।
पर निमित्त जो बनता, स्वयं खोदता वह निज दुःख की खान।।
हो चाहे प्रतिकूल परिस्थिति, हो चाहे सब विधि अनुकूल।
दोनों ही प्रभु–प्रेरित हैं, दोनों में प्रभु–अनुकम्पा मूल।।
उनसे लाभ उठाओ, चाहो सबका सदा परम कल्याण।
निज सुख–तन–मन–धन दे, चाहो पर का सदा विपद् से त्राण।।

ज्ञान एवं कर्मयोग में श्रेष्ठता से भ्रमित अर्जुन

डा0 जे0 एन. राय
ठेकमा, आजमगढ़ उ0प्र0

योगयोगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान ने गीता के दूसरे अध्याय में अर्जुन को ज्ञान का उपदेश दिया। उसके अन्तःकरण में मोह का कल्मष समा गया था, जिसके फलस्वरूप अर्जुन देह और उसके सम्बन्धों में बँधे लोगों को नित्य समझ बैठा था, उसे श्रीकृष्ण भगवान आत्मज्ञान के तीव्र प्रकाश में दूर करने का प्रयत्न करते हैं। वही श्रीकृष्ण गीता के तीसरे अध्याय में अर्जुन को कर्म में प्रवृत्त होने के लिये कहते हैं।

अर्जुन समझ नहीं पाता कि उसके लिये क्या करना श्रेयस्कर है। उसे तो यही लगता है कि श्रीकृष्ण ने उसके समक्ष ज्ञान की प्रशंसा की है जबकि स्वयं उसे वे युद्ध करने का उपदेश दे रहे हैं। युद्ध एक घोर कर्म है, उसमें हिंसा है, उसके द्वारा भला ब्राह्मी स्थिति कैसे प्राप्त हो सकती है? कर्म में चांचल्य है, बहुत्व का अनुभव है, भावों का विषम स्पन्दन है, तब उससे ब्राह्मी स्थिति का समत्व कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव यदि ब्राह्मी स्थिति को पाना ही, स्थितप्रज्ञ होना ही जीवन का लक्ष्य हो, तब इस घोर कर्म–चक्र में से गुजरने का क्या तात्पर्य? अर्जुन ने अपनी शंका को प्रकट किया कि:–

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।। 3–1।।
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।। 3–2।।

'हे कृष्ण, यदि आप बुद्धि को कर्म से श्रेयस्कर मानते हैं, तो मुझे इस घोर युद्ध में संलग्न होने के लिये क्यों कहते हैं? आप तो मानो मिले जुले से वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित कर दे रहे हैं। आप निश्चित कर लीजिये कि मेरे लिये कौन सा पथ कल्याण का होगा और उसी का उपदेश मुझे दीजिये।

इस शंका में अर्जुन की [illegible] में विनय एवं विकलता है। इसीलिये अर्जुन ने शंका के समाधान के लिये भगवान को व्याकुलता में दो बार 'जनार्दन,' 'केशव,' का सम्बोधन किया है। इस पर श्रीकृष्ण उत्तर में कहते हैं–

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।
3–3।।

दो निष्ठाओं की बात कह कर भगवान श्रीकृष्ण परमार्थ के दो पथों का निर्देश करते हैं और

यह स्पष्ट करते है कि ये दोनों पथ परमार्थ लाभ के स्वतंत्र साधन है। यहाँ निष्ठा से तात्पर्य है "मोक्ष निष्ठा, यानी वह जिस पर चलने से अन्त में मोक्ष मिलता है। दो निष्ठायें कौन सी है? एक ज्ञान योग की और दूसरी कर्मयोग की, ज्ञानयोग की निष्ठा सांख्यमार्गी के लिये है और कर्मयोग की निष्ठा योगी के लिये।

इस प्रकार अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में भगवान कृष्ण ने दो निष्ठाओं की बात कही, तो स्वाभाविक ही अर्जुन को लगा कि जब ज्ञानयोग भी एक रास्ता है, तो मैं उसी से क्यों न चलूं? कर्मयोग के रास्ते घोर हिंसामय कर्मों का चक्कर है। इस चक्कर में क्यों पड़ा जाये? ज्ञानी का सहज, सरल, झंझटहीन पथ ही क्यों न पकड़ा जाये? अर्जुन के इस मन्तव्य का उत्तर भगवान श्री कृष्ण ने दिया:-

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।

3-4।।

"केवल कर्म का प्रारम्भ न करने से ही मनुष्य नैष्कर्म्य की अवस्था को नहीं पा लेता है, न ही कर्म का त्याग कर देने मात्र से सिद्धि को पाता है।"

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दो निष्ठा 'ज्ञान, और कर्म', परमपद पाने की बता दी, किन्तु अर्जुन को भीतर ही भीतर स्थितप्रज्ञ का नैष्कर्म्य भाव प्रलोभित कर रहा है। उसे लगता है कि यदि कर्म के झंझट से बच कर नैष्कर्म्य में आ जाये, तो उससे बढ़ कर और कुछ नहीं। पर अर्जुन नहीं समझ पा रहा है कि नैष्कर्म बिना कर्म किये प्राप्तव्य नहीं है। नैष्कर्म्य, का अर्थ 'कर्मराहित्य' है यानी ऐसी स्थिति जहाँ कर्म का अभाव हो जाये।' कर्म के अभाव की स्थिति कैसे आये? जब भीतर ज्ञान का आलोक इतना प्रखर हो जाये कि यह सारा जगत्-प्रपंच असार और अर्थहीन मालूम पड़ने लगे, तो अपने आँप कर्म की प्रेरणा कुण्ठित हो जाती है। यही ज्ञान निष्ठा है। पर यह ज्ञान का आलोक भी बिना कर्म किये नहीं आता, पहले निष्काम बुद्धि से कर्म करना होगा। ऐसा कामनाहीन कर्म मन के मल को धो देता है। जब मन शुद्ध होता है, तब उसमें ज्ञान को धारण करने की योग्यता आती है, तब उसमें ज्ञान टिकता है। यह अभ्यास सतत करते रहने से मन अधिकाधिक शुद्ध होता है और ज्ञान में प्रगाढ़ता आती है। यही ज्ञाननिष्ठा की अवस्था है। इसी को "नैष्कर्म्य" कहते हैं। नैष्कर्म्य की अवस्था पाने के लिये कर्म करना ही होगा। कर्मों के सन्यास (त्याग) से भी सिद्धि नहीं मिलती। कर्मों का प्रारम्भ न करना दोष है और कर्मों को बीच में छोड़ देना दोष है। पहले दोष का परिणाम यह है कि उससे नैष्कर्म्य नहीं सधता और दूसरे दोष का परिणाम यह है कि उससे सिद्धि नहीं प्राप्त होती है।

कर्मयोगी का 'नैष्कर्म्य' वह अवस्था है, जहाँ वह तीव्र से तीव्र कर्म करता है, पर कर्तापन न रहने के कारण कर्म उसे क्षुब्ध नहीं कर पाता। कर्मयोगी के लिये सिद्धि का अर्थ है अपनी साधना में सफलता। ज्ञानी और कर्मयोगी दोनों को 'नैष्कर्म्य' और 'सिद्धि' की प्राप्ति के लिये कर्म करना अनिवार्य है। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के शंकाओं का समाधान दो निष्ठाओं ज्ञान और कर्म से किया है। ❑❑❑

शिष्य-संस्कार भुगतान की शिक्षाप्रद घटना

प्रेषक–केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव भगवान की आज्ञाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। प्रत्येक सद्शिष्य इस तथ्य से अवगत है और अपनी पूरी सावधानी से श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञाओं का अक्षरश: पालन करने का प्रयत्न करता है, परन्तु किसी क्लिष्ट संस्कार के भुगतान के समय, अत्यन्त सावधानी बरतने पर भी, वह श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा का पालन नहीं कर पाता। श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम की कृपा क्षेत्र में घटित एक सत्य प्रसंग इस रहस्य को बिल्कुल स्पष्ट कर देता है।

प्रसंग सन् उन्नीस सौ इकहत्तर का है। लखनऊ शहर निवासी हमारे एक गुरुभाई की तबियत खराब होना शुरु हुई, एवं ज्यों–2 उन्होंने दवा की, रोग घटने के बजाय बढ़ता ही गया। एक समय ऐसा भी आ गया कि लखनऊ शहर के डाक्टरों ने इन्हें लाइलाज घोषित कर दिया एवं इनसे कहा कि आप दिल्ली चले जायें, वहीं इस रोग का इलाज सम्भव है।

परिपूर्ण श्री सद्गुरुदेव ने दीक्षा प्राप्त शिष्य के लिए, त्रिलोकी में उसके गुरुदेव के अलावा, अन्य कोई उसका हितैषी न तो है और न होगा। आदरणीय लखनऊ निवासी गुरुभाई ने, जो सम्भवत: अग्रवाल थे एवं उनकी धर्म परायणा पत्नी का नाम श्रीमती सुमन अग्रवाल था, श्री गुरु चरणों में, रोग की विस्तृत चर्चा करते हुए प्रार्थना–पत्र दिया। हमारे श्री गुरुदेव भगवान दु:खियों की प्रार्थना तत्काल सुनने के लिए बेजोड़ है। पत्र मिलते ही उन्होंने तत्काल कृपा पत्र, श्री अग्रवाल जी के लखनऊ पते पर भेज दिया। आशीर्वाद के बाद पत्र में लिखा था कि लल्ला, तुम दोनों अपने दिल्ली आश्रम पर चले जाओ। वहाँ हमारा प्रिय ब्रह्मचारी बच्चा श्री वेद आश्रम पर रहता है। उससे पूरी बात बतला देना। आश्रम पर ही निवास करना, भोजन करना, दोनों समय आरती में उपस्थित रहना तथा अस्पताल में इलाज कराना। साथ ही अपने गुरुमंत्र का यथासम्भव जप करते रहना। यदि तुम ऐसा करोगे, तो करुणा सागर श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं तुम स्वस्थ हो जावोगे। साथ ही श्री गुरुदेव भगवान ने एक और पत्र ब्रह्मचारी वेद जी के लिए, दिल्ली आश्रम के पते पर लिखवाया, जिसमें लिखा था, "लखनऊ के तुम्हारे गुरुभाई, अपने इलाज के लिए अपनी पत्नी के साथ दिल्ली आश्रम पर जा रहे हैं। ऐसा प्रबन्ध रखना कि इनको किसी प्रकार की असुविधा न हो।

आराध्यदेव के हस्ताक्षर युक्त कृपा पत्र लखनऊ में आदरणीय भाई अग्रवाल जी को तथा दिल्ली आश्रम में ब्रह्मचारी वेद जी को हस्तगत हो गये। श्री अग्रवाल जी उसके बाद सपत्नीक दिल्ली आश्रम पर पहुँच गये। पवित्र एवं पावन दिल्ली आश्रम पर, श्री आराध्यदेव जी की आज्ञाओं के अनुरुप निवास करते हुए इन्होंने अपना इलाज कराना प्रारम्भ किया। श्री त्रिलोकीनाथ का संकल्प पूरा होना ही था। धीरे–धीरे लाभ होना आरम्भ हुआ एवं करीब चार महीने के बाद से

बिल्कुल निरोग हो गये। डाक्टरों ने पन्द्रह दिनों की दवा लिखकर उन्हें घर जाने की सलाह दी। इसके बाद ये दम्पति श्री गुरुचरणों में पहुँचकर चरण स्पर्श किये। साथ ही अपना पूरा विवरण निवेदित कर, घर लखनऊ जाने की प्रार्थना किये। श्री गुरुदेव भगवान ने आशीर्वाद देने के बाद कहा, ''लल्ला! अपना मंत्र–जप एवं स्वाध्याय नित्य प्रति करते रहना। क्लिष्ट संस्कारों के सुगम भुगतान के लिये अधिकाधिक मंत्र जप आवश्यक है।'' इसके बाद श्री गुरुदेव भगवान ने प्रसाद एवं आशीर्वाद दिया एवं अग्रवाल दम्पति यात्रा आरम्भ कर अपने निवास स्थान लखनऊ शहर पहुंच गये। अपने निवास स्थान पहुँचकर सानन्द जीवनयापन करने लगे। श्री अग्रवाल दम्पति नित्य प्रातः सायं आरती पूजा करने लगे परन्तु मंत्र जप मात्र पन्द्रह–बीस मिनट ही करते थे। वह भी केवल अग्रवाल साहब ही जप करते थे, उनकी धर्मपत्नी बिल्कुल ही मंत्र–जप नहीं करती थी।

सकुशल एवं निरोग जीवन व्यतीत करते हुए श्री अग्रवाल दम्पति को पाँच साल ही हुए होंगे कि वही रोग उन्हें दुबारा हो गया। इस बार इस रोग की प्रचण्डता कुछ ज्यादा ही थी। जुलाई माह का समय था, इनकी पत्नी बहुत ही घबड़ा गयी एवं इसी घबड़ाहट में उन्होंने श्री गुरुदेव भगवान को श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम के पते पर प्रार्थना पत्र रजिस्टर्ड डाक से भेजा। श्री गुरुपूर्णिमा का पर्व समाप्त हुए तीन दिन बीत चुके थे एवं उस दिन चौथा दिन था। आराध्य देव भोजन विश्राम के बाद, अपने भोजनालय के पास आराम कुर्सी पर विराजमान होकर बारी–बारी से आये पत्रों को पढ़ते एवं फिर अपने विद्वान बच्चों को उसका उत्तर लिखने को दे देते, जो उनके आराम कुर्सी के सामने बिछे टाट पर बैठ कर उनकी मनो हारी छवि का दर्शन लाभ ले रहे थे। लगभग पन्द्रह पत्रों का उत्तर लिखने को उन्होंने दिया। दो पत्र उन्होंने अपने पास रख लिया। उनमें से एक पत्र उन्होंने निकाला एवं उसे पढ़ा इसी समय हमारे आदरणीय गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री वेद जी भी वहाँ आ गये एवं आराध्य देव को साष्टांग प्रणाम कर, सामने बिछे टाट पर बैठ गये। पत्र पढ़ने के बाद श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखार बिन्द से कहा, ''अन्तिम समय तो आ ही गया है। अपने कुछ नहीं करेंगे जो कुछ करें वो गुरुदेव ही करें। बार–बार कहा कि अपने मंत्र का अधिकाधिक जप करो, वह नहीं करेंगे बस सब कुछ गुरुजी करें।'' इतना शब्द कह कर आराध्य देव करीब दस मिनट चिन्तन की मुद्रा में शान्त बैठे रहे। उसके बाद वह पत्र आदरणीय ब्रह्मचारी वेद जी को दिये एवं बोले कि इसे पढ़ लो। श्री वेद जी ने जब पत्र पढ़ लिया, तो आराध्यदेव जी ने अपने मुखारबिन्द से कहा कि लल्ला! तुम तो इसे अच्छी प्रकार से जानते हो। दिल्ली आश्रम में निवास के समय से तुम्हारी इनसे अच्छी मित्रता भी बन गयी है। उनकी वाणी समाप्त होते ही आदरणीय भाई वेद जी ने कहा कि क्यों हमको चिढ़ा रहे हैं। एक तरफ, कह रहे हैं कि मेरी उनसे अच्छी मित्रता है एवं दूसरी तरफ कह रहे हैं कि उसका अन्तिम समय आ गया है। श्री गुरुदेव जी भगवान ने कहा कि बात तो मैं बिल्कुल सत्य ही कह रहा हूँ। इस समय अग्रवाल का अन्तिम समय आ ही गया है। श्री वेद जी ने प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि गुरुदेव हमें चिढ़ाइये मत।

आदरणीय ब्रह्मचारी वेद जी की प्रार्थना सुनकर आराध्यदेव जी मुस्करा दिये एवं फिर अपने श्री मुख से बोले, ''क्या चाहते हो, वह ठीक हो जाये।'' आदरणीय श्री वेद जी ने कहा, ''ठीक नहीं होना, चाहता तो क्या मैं यह चाहता हूँ कि वह मर जाये।''

आदरणीय ब्रह्मचारी वेद जी की बालहठ वाली प्रार्थना सुनकर आराध्यदेव जी कुछ गम्भीर मुद्रा में हो गये एवं फिर उनको लेकर अपने गुरु भवन में गये। श्री मुख ने ब्रह्मचारी वेद से कहा कि यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा मित्र अभी कुछ वर्ष इस दुनिया में जीवित रहे, तो मैं अपने स्टोर वाले कमरे में जा रहा हूँ। श्री सिद्ध योग दरबार से जुड़े साधक यह स्टोर वाला कमरा अवश्य ही देखे होगें, जिसका एक दरवाजा गुरु भवन में खुलता है और दूसरा दरवाजा महिला आश्रम के बरामदे में खुलता है। तुम हमारे निवास वाले कमरे (श्री गुरु निवास) के दरवाजे के पल्ले लगाकर (अर्थात् दरवाजा बिना सिटिकनी के बन्द कर) कमरे से बाहर दरवाजे के पास बैठ जाओ। कम से कम आधे घंटे या जब तक मैं आवाज न दूं, दरवाजा बिल्कुल मत खोलना। न तो इस अवधि में तुम इस कमरे के अन्दर आना और न किसी अन्य को, चाहे वह कोई भी हो अन्दर आने देना। इतना कहने के बाद श्री मुख ने कहा, "क्यों मेरी पूरी बात तुम अच्छी प्रकार समझ गये।" आदरणीय ब्रह्मचारी वेद जी द्वारा सिर हिलाकर स्वीकृति हो जाने के बाद, श्री मुख ने कहा कि अब मैं स्टोर में जा रहा हूँ, चाहे जैसी भी परिस्थिति आये, हमारी आज्ञा का पालन अवश्य करना। न तो स्वयं कमरे में आना और न किसी को भी कमरे के अन्दर आने देना। श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा का पालन करना, तलवार की धार पर चलने के समान दुरुह कार्य है। परन्तु यदि किसी ने उनकी अहेतुकी कृपा से आज्ञा का पालन कर लिया तो उसका लोक–परलोक दोनों निहाल हो जाते है।

स्टोर में पहुँचने के बाद आदरणीय ब्रह्मचारी वेद जी ने जो दृश्य देखा वह विलक्षण एवं महान आश्चर्यजनक था। आराध्यदेव श्री गुरुदेव जी महाराज, स्टोर में रखे पलंग पर पड़े–पड़े ऐसे छटपटा रहे हैं, जैसे कोई असाध्य रोगी महान कष्ट के कारण छटपटाता है। श्री आराध्यदेव जी की श्वास उर्ध्व चल रही थी एवं उनकी दोनों आँखें बिल्कुल लाल वर्ण की हो गयी थी एवं उनसे अश्रुधारा निकल रही थी। ऐसा दृश्य देखकर वेद भैया हतप्रभ हो गये एवं उन्हें रुलाई आ गयी। रोते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर श्री गुरुदेव जी महाराज से प्रार्थना किया, "प्रभो! आपको क्या हो गया है।" ब्रह्मचारी वेद की प्रार्थना के बाद एक सेकेण्ड भी नहीं लगा होगा, एवं आराध्यदेव सामान्य स्थिति में आ गये। तदन्तर उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे क्या हुआ है? मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ। तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा मित्र अग्रवाल ठीक हो। यदि तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया होता तो वह अवश्य ही ठीक हो जाता।" योग योगेश्वर की योग माया के प्रभाव वश, आदरणीय वेद भैया को पूरा प्रसंग विस्मृत सा हो गया था। उन्होंने हाथ जोड़कर श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना किया, "प्रभो कैसी आज्ञा एवं किसकी आज्ञा।" आराध्यदेव श्री गुरुदेव जी महाराज ने अपने मुखारविन्द से कहा, "लल्ला वेद! मैंने तुमसे आधा घंटा पहले कहा था कि इस कमरे में, किसी को भी, किसी भी परिस्थिति में, कमरे के अन्दर मत आने देना। तुमने हमारी इस आज्ञा का पालन नहीं किया।"

श्री गुरुदेव के इस उद्‌बोधन के बाद, आदरणीय वेद जी को पूरे घटनाक्रम की स्मृति लौट आयी एवं उन्होंने श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम निवेदित करते अपनी गलती के लिए बारम्बार क्षमा याचना की। आखिर ठहरे तो औढ़रदानी। ब्रह्मचारी श्री वेद को कंठ से लगा लिया एवं अपनी मधुर मुस्कान के साथ, समझाया। लल्ला कोई बात नहीं। परमात्मा को जो मंजूर था, वही हुआ। अग्रवाल के क्लिष्ट संस्कार, अब उसकी मृत्यु का कारण बन जाएगें एवं

वह अब इस संसार से चला जाएगा।

अब श्री गुरुदेव के चरणों में समर्पित इन पंक्तियों के साथ, यह प्रसंग विश्रामित है –

गुरु परम ब्रह्म भगवान हैं, कोई माने या न माने।
गुरु समरथ सर्व सुजान हैं, कोई माने या न माने।।
गुरु भवसागर पार लगावे, भीषण मन के भ्रम को मिटावें।
गुरु सकल गुणों की खान हैं, कोई माने या न माने।।

■■■

संसार –ग्राह से बचने के उपाय

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि।।
(अथर्व. 14/1/38)

'ग्राभ' पद में 'ग्रह' धातु है। वस्तुतः यह ग्राह शब्द है। 'ह' को 'भ' हो गया है। ग्राह का अर्थ नाक (मगरमच्छ) होता है। इस मन्त्र में संसार का ग्राह रूप से वर्णन है। यह संसार–ग्राह बड़ा चमकीला–भड़कीला है। वह अपनी चमक से जनता को अपनी ओर खींच लेता है। जो मनुष्य इस संसार–ग्राह की ओर खिंच जाते हैं, उनकी देह दूषित हो जाती है। भोग का यह परिणाम स्वाभाविक है और अन्त में वे भोगी इस संसार–ग्राह के ग्रास बनकर नष्ट हो जाते हैं। 'रुश' का अर्थ हिंसा भी है। जिससे यह भाव सूचित होता है कि चमकीला संसार–ग्राह हिंसक है। यह हुआ प्रेय मार्ग का वर्णन।

श्रेय मार्ग का वर्णन इसी मन्त्र के उत्तरार्ध भाग में है। प्रकृति में न फँसकर परमात्मा की ओर झुकना यह श्रेय मार्ग है। परमात्मा भद्र है, रुचिर है। उसको प्राप्त करने के लिए प्रथम संसार–ग्राह का त्याग करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य अपने आप को उत्तम बनाकर उस परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है।

परन्तु प्रश्न पैदा होता है कि संसार का त्याग क्या वैदिक सिद्धान्तानुकूल है? उत्तर है – नहीं, क्योंकि संसार साधन है परमात्मा की प्राप्ति का। संसार और परमात्मा – ये दो विरोधी मार्ग नहीं।

पूज्य श्री रामाश्रय दादा जी

श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव

(गतांक से आगे)

डा0 श्री कृष्णवीर सिंह तौमर पण्डित श्री रामाश्रय दादाजी के बड़े घनिष्ठ प्रेमी रहे है। 1970–80 के दशक में वे एत्मादपुर में एक किराये की दुकान लेकर महाप्रभु श्री रामलाल जी के नाम से अपना क्लीनिक चलाते थे। एक रोज की घटना है दादा जी सब्जी का भगौना चूल्हे से उतार रहे थे भगौना उनके हाथ से छूट गया। गरम–गरम सब्जी से घोंटू से ऐंड़ी तक उनका पैर बुरी तरह से जल गया। पैर पर छोटे–बड़े अनेक फफोले पड़ गये। गुरु आज्ञा का पालन करते हुए भाई श्री केशव देव दादा जी उनको अपने गुरुभाई डा0 वेद जी के यहाँ दिखाने ले जाते थे। एक दिन जब दोनों डा0 वेद जी के यहाँ से दिखाकर लौट रहे थे तो रिक्शे में ही श्री केशवदेव दादाजी की निगाह भाई तौमर जी के क्लीनिक पर पड़ी। श्री प्रभुजी की ही दुकान समझ कर वे डा0 भाई श्री तौमर जी से मिले। दोनों महात्माओं का अपने क्लीनिक पर अचानक पाकर डा0 साहब बड़े प्रसन्न हुये। आदरपूर्वक दोनों को चरणों में प्रणाम करके उन्हें बिठाया। भाई तौमर जी ने ध्यान से जले पैर को देखा और सारे फफोलों को काट डाला। पैर की ढंग से धुलाई करके पट्टी कर दी और कुछ दवाऐं खाने के लिए लिख दी। पूज्य दादा जी को उसी समय दर्द में बहुत आराम मिला। भाई तौमर जी के सेवाभाव को देख कर बड़े प्रसन्न हुऐ। कहने लगे– ''भईया! अब तो तुम ही हमारी पट्टी कर दिया करो हम महाराज जी से आज्ञा ले लेंगे। भाई तौमर जी ने पूछा– ''दादाजी! दवा व रिक्शे आदि का खर्च कौन उठाता है?''दादाजी ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया– हम तो महाराज जी के है वही हमारा खर्च उठाते है और हमें कौन देने वाला है?' दादाजी फीस देने लगे। भाई जी ने हाथ जोड़ लिए बोले– ''मैं तो गुरुदेव जी की सेवा कर रहा हूँ पैसा नही लूंगा। दादाजी! आप को ऐत्मादपुर आने में रिक्शे में बहुत कष्ट होता होगा। अब आप परेशान मत होना मैं कल से सुबह सबसे पहले आपकी पट्टी करने आश्रम पहुँच जाया करूँगा।'' भाई तौमर जी रोज नियम से आश्रम जाते गुरुदेव को प्रणाम करके दादाजी की पट्टी करते। एक दिन भारी वर्षा हुई चारों तरफ पानी भर गया। भाई तौमर जी ने साइकिल निकाली और पानी में भीगते हुए ठीक समय पर पट्टी करने आश्रम पहुँच गये। श्री महाराज जी कहने लगे–अरे लल्ला! तुम अपने दादाजी के लिए इतना कष्ट उठाते हो। आकाश में अभी भी बिजली चमकती है यहाँ तक पहुँचने में तुम्हें बहुत तकलीफ उठानी पड़ी होगी। भाई तौमर जी ने पूर्ण विश्वास में भरते हुए कहा– ''महाराज जी! मैं गुरुसेवा के लिए हमेशा तैयार हूँ कितनी भी बाधाऐं आऐं मैं गुरुसेवा के लिए बाधाओं का सामना करने की पूरी कोशिश करूँगा। हमें चिन्ता किस बात की जब आप हमारे साथ हर समय है।'' परम पूज्य श्री गुरुदेव जी ने भाई तौमर जी की पीठ थपथपाते हुए कहा– ''शाबाश लल्ला! तुम बहुत बहादुर बच्चे हो।''

पूज्य श्री की प्रसन्नता को देख कर भाई तौमर जी सोच रहे थे कि दादाजी के पैर को अवश्य ही पूर्ण लाभ बड़ी शीघ्रता से हो जायेगा। हुआ भी ऐसा ही दो–एक दिन में ही सारे घाव ठीक हो गये,

केवल दो मटर के बराबर घाव रह गये। दादाजी का पैर देखते हुए कहा, ''अरे लल्ला! तुमने तो पूरा पैर ही ठीक कर दिया।'' गुरुदेव को प्रसन्न देख कर डा० साहब जी सोच रहे थे कि अब शीघ्र ही पूरा पैर ठीक होगा किन्तु वो दोनो घाव किसी भी प्रकार से ठीक नहीं हो रहे थे। पूरी–पूरी कोशिश करने पर भी सफलता नही मिली। भाईजी ने हिम्मत नही हारी अन्ततः उन्होंने पूज्य दादाजी से निवेदन किया। दादाजी! मै तो बहुत परेशान हो गया हूँ अब आप ही कोई उपाय बताइये। तब दया करके दादाजी ने उन्हे रास्ता दिखलाया। कहने लगे– ''देखो भईया! एक उपाय है गुरुजी के श्री चरणों मे प्रार्थना कर दो कि आप की कृपा से ही ये दो छोटे घाव ठीक हो सकते हैं यह मेरे वश की बात नहीं है।'' श्रीमान भाई तौमर जी सोचने लगे दादाजी स्वयं ही क्यों नही कह देते किन्तु शीघ्र ही उनके हृदय मे प्रेरणा हुई कि दादाजी काफी समय से गुरुसेवा मे है गुरुदेव जी की भावनाओं को हमसे ज्यादा ही समझते होंगे उनकी आज्ञा मान लेनी चाहिए। भाई तौमर जी दादाजी की आज्ञानुसार शीघ्र गुरुचरणो में पहुँच गये और कर बद्ध निवेदन कर दिया– ''महाराज जी! मै हर प्रकार से कोशिश कर रहा हूँ और करता रहूँगा किन्तु यह सामान्य से दोनों घाव आप की कृपा के बिना ठीक नहीं हो सकते।'' श्री गुरुदेव भगवान प्रसन्न मुद्रा मे भर कर कहने लगे– ''अच्छा लल्ला! हमारी कृपा ऐसी है। ये हमारी कृपा सभी कार्यों मे अड़ंगा क्यों बन जाती है। जो भी हो सभी यही कहते हैं कि आपकी कृपा से ही सब कुछ होता है। तो हमारी कृपा ऐसी है लला! अच्छा तो फिर तुम्हारे लिए हमको कृपा बुलानी ही पड़ेगी।'' तत्काल दादाजी को बुलवा कर गुरुजी ने उनके पैर के घावों पर गहरा दृष्टिपात करते हुये कहा, ''कल सुबह तक लला! ये दोनो घाव बिल्कुल ठीक हो जायेंगे।'' दूसरे दिन जब भाई जी ने पट्टी खोली तो आश्चर्य से भर गये दोनों घाव बिल्कुल ठीक हो गये थे। स्टोर में जाकर दादाजी से गुरुजी ने कहा, ''लला! इतनी सेवा की है इसे फीस भी तो देनी चाहिए।'' दादाजी ने तुरन्त कहा, ''महाराज जी! वह फीस किसी भी प्रकार नही लेगा।'' श्री महाराज जी स्टोर से बाहर निकल कर आये बोले, ''लला! तुम अपनी फीस क्यों नही ले लेते? यह तो तुम्हे लेनी ही चाहिए।'' भाईजी ने प्रार्थना की– ''गुरुसेवा की फीस मै लेना नहीं चाहता, प्रभुजी! यह आपसे बढ़कर नहीं है हमारे पास जो कुछ है वह आपका ही तो दिया हुआ है।'' महाराज जी कहने लगे, ''अच्छा लला! अब तो हमको भी तुम्हारे लिए कुछ करना पड़ेगा। श्री गुरुदेव जी पुनः स्टोर मे गये और एक मिठाई का डिब्बा अपनी द्वारा शक्तिपातित करते हुए लाए और कहा, ''लो लला! यह तुम्हारे लिए है और ढेर सारे फल प्रसाद मैं देते हुए आशीर्वाद दिया– लला! हम हमेशा तुम्हारे साथ है।''

रामनवमी आदि उत्सवों पर श्री महाराज जी भाई तौमर जी से कह दिया करते थे, 'अरे लल्ला! तुम्हारे तो दादाजी है ही तुम सपरिवार उनके ही कमरे मे ठहर जाना। इसी प्रकार लोगों को आश्रमवासियों से अपना प्रेम बढ़ाकर अपनी व्यवस्था स्वयं ही कर लेनी चाहिए। अत्यधिक भीड़ बढ़ जाने के कारण मैं सभी की सुविधाजनक व्यवस्था नही कर पाता।'

परम श्रद्धेय श्री गुरुदेव जी के लीलावसान के पश्चात भाई तौमर जी 1996–97 के आस–पास मकान के लिए बहुत परेशान थे उन्हें किराये पर कहीं सुविधाजनक मकान नहीं मिल रहा था। वे दादाजी के पास आकर बहुत रोये और अपनी समस्या कही। दादाजी ने रज प्रसाद देते हुए कहा, 'लो महाराज जी तुम पर अवश्य कृपा करेंगे।' शीघ्र ही उनको बड़ी सरलता से अपने क्लीनिक के निकट ही अपने एक वरिष्ठ गुरुभाई जी का मकान किराये पर मिल गया वे अभी भी उसी मे रह रहे

है।

इस रज प्रसाद के विषय में पण्डित जी ने हमें स्वयं ही बताया था कि एक दिन हमने महाराज से निवेदन किया महाराज जी! आप प्रोग्रामों में चले जाते हैं आपके पीछे लोग हमसे रज प्रसाद माँगते हैं। महाराज जी ने कहा, "अच्छी बात है लला जाओ रज का डिब्बा उठाकर लाओ। यह रज मैं तुमको दे रहा हूँ तुम इसे दूसरे डिब्बे में रख लेना इसी में और मिला कर बढ़ाते रहना। जो भी जिस कार्य के लिए विश्वास के साथ रज प्रसाद लेगा उसका कार्य अवश्य ही बनेगा। बहुत से हमारे बहन–भाईयों ने पण्डित जी से रज प्रसाद लेकर लाभ उठाया। अपने अन्तिम समय तक वे उस रज प्रसाद से लोगों की सेवा करते रहे।

एक बार ग्वालियर से बड़े धनवान व्यक्ति अपने असाध्य रोग का इलाज कराने आश्रम में आए। काफी दिन आश्रम में हो गये उन्हें स्वस्थ होने में काफी समय लग रहा था। उनकी धर्मपत्नी जी ने देखा कि कुछ लोग गुरुजी को बहुत सा पैसा देते हैं, उन पर गुरुजी बड़े प्रसन्न दिखलायी पड़ते हैं शायद इनके कार्य शीघ्र बन जाते हों। एक दिन जब गुफा में दर्शन करने आईं तो दादाजी से कहने लगीं, 'हम गुरुजी को दो लाख रुपया भेंट करेंगे आप गुरु जी से हमारे लिए प्रार्थना कर दो कि हमारे पतिदेव को वे शीघ्र स्वस्थ कर दें।' गुरुजी के निकट स्नान के लिए पानी लेकर जब दादाजी पहुँचे तो श्री गुरुदेव जी स्वयं ही पूछने लगे, 'वह देवी क्या कह रही थी, लला? दादाजी उनकी अन्तर्यामिता को देख कर दंग रह जाते थे। उन्होंने महाराज जी को सारी बात बतला दी। गुरुजी ने कहा, "जाओ लला! पहले उस देवी से जा कर कह दो गुरुजी कह रहे हैं कि हमारे प्रभुजी पैसों से नहीं खरीदे जा सकते।" दादाजी कहते थे–'अनेकों बार अपनी अन्तर्यामिता का बोध करा वह मेरी बुद्धि में कोई स्थान ही नहीं छोड़ना चाहते थे कि मैं उनको मनुष्य ही समझता रहूँ। शक्तियों को संभाल कर पाना मेरे वश की बात नहीं थी। मेरी विलक्षण योग्यताएँ धीरे–धीरे जाती रहीं। गुरुजी ही हमारी शक्तियों के मालिक स्वयं थे।"

पूज्य दादाजी के ही शब्दों में:–

एक बार रात्रि के 10 बजे मैं गुरुदेव जी को उनके कमरे में विश्राम करा कर बाहर निकला। मैंने देखा कि एक कार में से पाँच–छः लोग उतरे हैं मैं तुरन्त उनके पास गया और आदरपूर्वक पूछा– "आप लोग कहाँ से आये हैं?" उनमें से एक सिर पर हरा साफा बाँधे हुये थे। कहने लगे– "हमको स्वामी जी से मिलना है।" मैं तुरन्त गुरुजी के कमरे में गया और कहा– 'महाराज जी! कोई मुसलमान से सिर पर साफा से बाँधे कुछ लोगों के साथ आप से मिलना चाहते हैं। वे बड़ी फुर्ती के साथ मेरे पीछे ही चले आए और कहने लगे– "स्वामी जी! मैं राजनारायण हूँ।" गुरुजी तुरन्त बैठे– "आओ लला! आओ। सभी गुरुदेव जी को प्रणाम कर के बैठ गये। राजनारायण जी ने कहा, 'मुझे आपका पत्र जेल में प्राप्त हो गया था आपने लिखा था हमारा पत्र पाते ही तुम्हारी जमानत हो जायेगी शीघ्र ही तुम हमसे मिलने चले आना। आपकी कृपा से मुझे यहाँ तक पहुँचने में किसी प्रकार की बाधा का सामना नहीं करना पड़ा। महाराज जी बड़ी प्रसन्नता पूर्वक 'अच्छा लल्ला! अच्छा लल्ला!' कहते रहे। महाकृपा निकेतन गुरुदेव जी ने उन्हें 14–15 गुलाब के पुष्प प्रसाद में प्रदान किये। अनेक प्रकार की बातें होती रहीं। महाराजजी बड़े प्रेम से उनकी बातें सुनते रहे। माननीय श्री राजनारायण जी ने निवेदन किया मैं इन्दिरा जी के विरुद्ध चुनाव में अपनी विजय चाहता हूँ। महाराज जी–पुनः 'अच्छा लला! अच्छा

लल्ला!' कहते रहे। तभी महाराज जी ने देखा कि राजनारायण जी ने सारे फूल वहीं बैठे ही बैठ एक-एक करके गप-गप खा लिए। सन्त महापुरुषों के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास तथा सन्तों के प्रसाद में अपार श्रद्धा को देखकर महाराज जी बहुत प्रसन्न हुए और तत्काल आह्लादित मन से आशीर्वाद दिया, 'जाओ लला! खूब धूमधाम से अपना चुनाव प्रचार करो तुम्हारी अवश्य विजय होगी।

श्राद्ध के दिन श्री महाराज जी हर वर्ष की भाँति महिला निवास की छतों पर मुझे जल आदि लेकर अपने साथ ले जाते थे वहाँ तर्पण आदि करते थे। मैं यह सब देखकर सन्देह में पड़ जाता था। एक दिन मैंने पूछ ही लिया, 'महाराज जी! आपकी कृपा से सारी दुनियाँ का भला होता है। आपको भी श्राद्ध आदि करने पड़ते हैं?' महाराजजी ने मुझे समझाते हुए कहा- 'लला! यह कर्तव्य कर्म है तुमको भी करना चाहिए।'

सन् 1990 में महाराज जी ऋषिकेश आश्रम जाने की तैयारी में लगे थे। जाने से एक दिन पूर्व काफी देर रात तक मेरे तख्त पर बैठ कर मुझे स्नेह पूर्वक पूरे आश्रम की चाबियाँ आदि देकर आश्रम के अनके कार्यों की व्यवस्थाएँ समझाते रहे। कहने लगे, 'लला! तेरे पास कभी धन का अभाव नहीं रहेगा। कहीं न कहीं से व्यवस्था होती रहेगी। मैं हमेशा तेरे साथ हूँ। 25 जून 1990 को परम पूज्य करुणा सिन्धु गुरुदेव जी ने पंच भौतिक स्थूल शरीर का परित्याग दिल्ली आश्रम में कर दिया। मन बहुत दुःखी हुआ ऐसा भी होगा स्वप्न में भी नहीं सोचा था। जब श्री महाराज जी ऋषिकेश आश्रम के लिए प्रस्थान कर रहे थे मुझे अपने निकट बुला कर कहा, 'अपने सभी ब्रह्मचारी भाईयों के साथ मिल कर सेवा करते रहना। दर्शनार्थ आने-जाने वाले अपने भाई-बहनों की सुख सुविधाओं का ध्यान रखना। सब के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना। हमारे पीछे किसी को यह महसूस न हो कि गुरुजी अब आश्रम में नहीं हैं। आपस में कोई लड़ाई-झगड़ा मत करना। परम पूज्य गुरुदेव जी की यह आखिरी लीला है मैं समझ नहीं सका। मैंने सोचा कि महाराज जी जब लम्बे समय के लिए कहीं जाते हैं तो इसी प्रकार से समझाते हैं। इसीलिए मैंने गुरुजी के शब्दों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। गुरुजी के बाद में आश्रम की व्यवस्था ठीक से नहीं कर सका।

डा. श्री कृष्णवीर सिंह जी ने ब्रह्म. भाई सत्येन्द्र जी के बाद दादाजी को कई वर्षों के उपरान्त आरती करते देखा तो कहने लगे- 'दादाजी! आपको आज कई वर्षों के बाद आरती करते देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है। चार-छः दिन हमने आरती करके अपने छोटे भाईयों को सौंप दी है। गुरुजी के समय में खूब आरती की। लगभग 42-43 बार आरती की व्यवस्था उनको मिली और चली गई। अब हमारी आरती की कोई तमन्ना नहीं है।

कोई पाँच-छः वर्ष पूर्व रात्रि में चलता हुआ पंखा छत से दादाजी के ऊपर गिर पड़ा। उनके सिर की बगल से सटा हुआ पंखा गिरा। पंखे की तीनों पंखुड़ियाँ 'कमल' की पत्तियों की तरह ऊपर उठ गई थी। सिर बाल-बाल बच गया। सुबह सभी ने यह दृश्य आश्चर्य के साथ देखा। दादाजी बस यही बार-बार कहते रहे, 'अरे भईया! गुरुजी ने हमसे पहले ही कह दिया था कि हम हमेशा तेरे साथ हैं लला!'

पूज्य रामाश्रय दादाजी अब हमारे बीच उपस्थित नहीं है। श्री गुरुदेव जी के बाद आश्रम में वह शोभा-स्वरूप ही थे। दो-एक वर्ष से वे अस्वस्थ चल रहे थे। अन्तिम क्षणों में कठिन संस्कार भुगतान के साथ श्री सिद्ध गुफा आश्रम के अन्दर ही सन् 2006, अक्टूबर माह में करवा चौथ के दिन उनका शरीर सदैव के लिए शांत हो गया। ■■■

'स्व' का चिन्तन

प्रस्तोता—अशोक दिग्विजय

चिन्तन द्वारा अनुभव होता है जो नित्य–निरन्तर प्राप्त है। जो प्राप्त नहीं है, अपने से भिन्न वह चिन्तन–मात्र से नहीं मिलता, उसके संयोग के लिये कर्म करना होता है। 'स्व' अथवा अपने–आप की अनुभूति के लिये कर्म नहीं, चिन्तन आवश्यक है। 'स्व' अथवा 'मैं' या अहं का स्फुरण निरन्तर एक ज्योति की तरह हो रहा है, उस चिन्मय ज्योति में ही जो कुछ पर अथवा भिन्न है, वह प्रकाशित हो रहा है। प्रकाश में पर को देखना दृश्य को देखना है और स्वयं स्फुरित मैं–सङ्करहित अहं को देखना 'स्व' को देखना है। 'स्व में ही उस परमाश्रय का बोध होता है जिसमें अहंरूपी चैतन्यज्योति स्फुरित हो रही है। 'स्व' के साक्षात्कार का उपक्रम ही स्वाध्याय कहा जाता है।

अध्यात्मविद्या की शब्दावली और धर्मशास्त्रों में 'स्व' प्रमुख शब्द है। शिक्षित समाज में स्वाभिमान, स्वधर्म, स्वदेश, स्वावलम्बन आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं पर इसमें गर्भित रहस्य की अभिव्यक्ति अपनी जीवन–चर्या में विरले ही विद्वान कर पाते हैं। स्व और पर के भेद को कुछ ही साधक समझते हैं, प्रायः परके साथ स्व को मिलाकर ही अपना परिचय देते हैं। मानव–जीवन को धर्ममय बनाने के लिये स्वाध्याय परम सहायक साधन अथवा धर्म का प्रमुख अङ्ग माना गया है। अनेक साधक स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकों का अध्ययन समझते हैं। यद्यपि पुस्तकों के अध्ययन से अनेक प्रकार का ज्ञान होता है तथापि जहाँ कुछ बातों का ज्ञान होना हम लोगों के लिये सुखकर है, वहीं कुछ बातों का ज्ञान होना सुखकर होते हुए भी अन्त में दुःखद और अहितकर है।

अध्ययन के द्वारा ही आज मनुष्य अधिकाधिक अभिमानी और कामी होता जा रहा है, वह अध्ययनजनित ज्ञान के बलपर ही अपने मन की रुचि–पूर्ति के लिये छल, कपट, दम्भ और पाखण्ड करने की अच्छी कला जानता है। देह को सजाने और सुखोपभोग को जुटाने में वह अपने पूर्वजों को अयोग्य सिद्ध कर रहा है पर स्वाध्याय से वंचित रहकर अपनी अहंकृतियों का दुष्परिणाम नहीं देख रहा है। अध्ययन से ही प्रत्येक मनुष्य को अपनी कमियों का ज्ञान होता है, लोभी, मोही और अभिमानी अध्ययन करते हुए अपनी कमी की पूर्ति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। पर स्वका अध्ययन न करने के कारण अपने–आप अथवा अपने जीवन की कमी का ज्ञान उन्हें नहीं हो पाता। लाखों मनुष्य अपने अभाव की पूर्ति के लिये ही श्रम कर रहे हैं और जब उन्हें कुछ प्राप्त होता है तब बड़े गर्व से सिर उन्नत कर अभावपीड़ितों की दशा देखकर अपने–आपको कृतकृत्य मानते हैं, पर स्वका अध्ययन न कर सकने के कारण वे नहीं देख पाते कि संसार के अधिकाधिक ऐश्वर्य–वैभव प्राप्त करने के पश्चात् भी वे रंक हैं, रिक्त हैं, कामनायुक्त हैं—शान्त, स्वस्थ, निर्भय और मुक्त नहीं हैं। उनके जीवन में श्रम–ही–श्रम है, विश्राम नहीं है। हमें सतने बताया कि ऐसा अध्ययन करना चाहिये जो जड़ता से चेतना की ओर ले जाये, बन्धन से मुक्ति की ओर प्रेरित करे, दुःख के भोग से बचाकर, अधर्म, अन्याय और पाप से रक्षा कर धर्म, न्याय और पुण्य को प्रकाशित

करता रहे, जो पर–अन्य से विमुख बनाकर स्व में स्थिर कर दे।

अनेक साधक उसका चिन्तन करते हैं जो कर्म के द्वारा प्राप्त होता है और उसकी प्राप्ति के लिये कर्म करते हैं जो चिन्तन मात्र से प्राप्त दीखता है। हमें सावधान किया गया है कि जो कुछ अपने से भिन्न है, उसकी प्राप्ति के लिये विधिवत् कर्म करना पड़ता है। प्राकृतिक विधान से जो कुछ मिलता है उस पर अपना अधिकार तो होता नहीं है, वह अविवेक के कारण अपना ही प्रतीत होता है और वही अपने आपको–स्व को आच्छादित कर लेता है। स्व की विस्मृति में ही संसार सामने आता है। स्व में देह, धन, कुल, जाति, रूप, वर्ण और सम्बन्धी आदि के भर जाने पर उन्हीं का आकार–अहंकार बन जाता है। हमें यह भी समझाया गया है कि जो कुछ तुम अपने स्व में रख लेते हो, उसी को मेरा मानने लगते हो और जिस वस्तु में स्व को प्रतिष्ठित कर देते हो उसी से तन्मय होकर 'मैं' मानने लगते हो– ये ही 'मैं' और 'मेरापन'– दोनों बन्धन के हेतु हैं। बन्धन से मुक्ति पाने के लिये उस ज्ञान की आवश्यकता है जो स्व के अध्ययन से प्राप्त होता है।

भोगी सांसारिक वस्तुओं और व्यक्तियों का अध्ययन करता है, उनके उपभोग और उपयोग का ज्ञान प्राप्त करता है पर जो योगाभ्यासी है उसे स्व का अध्ययन आवश्यक होता है, इसके बिना समस्त विद्याएँ और योग्यताएँ निस्सार हैं। स्व के अध्ययन में–चिन्तन में अविद्या की सीमान्तर्गत सुखासक्ति बाधक बनती है, गुरु–विवेक स्व के अध्ययन चिन्तन में परम सहायक होता है। स्व को न जानना अज्ञान है और जानना मुख्य ज्ञान है। स्व को न जानने के कारण मिली हुई देहादि वस्तुओं से तन्मय हो जाने से ही काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय, हिंसा और घृणा आदि दोष उत्पन्न होते हैं, पुष्ट होते हैं और प्राणी को दुःख देते हैं। तत्व वेत्ता की दृष्टि में वे अभागे दया के पात्र हैं जो संसार के विषय में बहुत अधिक जानकारी रखते हैं पर स्व को नहीं जानते हैं। स्व के अध्ययन–चिन्तन से चित्त चिन्मय होता है, पर–जड़ के चिन्तन से वह जड़मय बना रहता है। जो स्वरूप को जानकर अनित्य वस्तु से असंग हो जाता है उसी पर संसार का शासन नहीं रहता, स्व को न जानने वाला ही पर–देहादि में अटका रहता है, जो देह में रुका है वही भौतिकवादी अध्यात्म से विमुख है। स्व के अध्ययन से भौतिकवादी की सद्गति–परम गति अध्यात्म की ओर होती है।

स्वाध्याय करते हुए ही हमें यह ज्ञात हो सका कि जब हम उत्पन्न होने और विनाश होने वाली देहादि वस्तु से अपने को मिलाकर उन्हें अपना रूप मानने लगते हैं, हम सत्ता से विमुख हो जाते हैं। जो कुछ हमें मिला है उसे अपना मानकर जब तक अपने में हम उसे स्वीकार किये रहते हैं, तब तक हम बन्धन से मुक्त नहीं हो पाते। अपनी स्वीकृतियों से जब तक हम मुक्त नहीं हो पाते तब तक नित्य प्राप्त परमात्मा के भक्त नहीं हो पाते हैं। स्वाध्याय द्वारा ही यह ज्ञान होता है कि जिस देह में स्व को प्रतिष्ठित कर रखा है वह मेरा नहीं है, जब देह मेरा नहीं है तब मैं देहमय रूप नहीं हूँ, जड़ नहीं हूँ, उत्पत्ति–विनाशधर्मी भी नहीं हूँ। इसी तरह स्व में प्रतिष्ठित कुछ भी अपना नहीं है, अहंता, ममता तथा आसक्ति के लिये कुछ बचता ही नहीं है। अहंता, ममता और आसक्ति से रहित होते ही स्व नित्य मुक्त है। जड़ वस्तु से असंग होते ही स्व चिन्मय है। चिन्मात्र तत्व की अनुभूति होते ही वही स्व परमात्मा से नित्य युक्त है। स्व का सत्य से नित्य युक्त चिन्तन करते ही भक्ति सुलभ हो जाती है, इसीलिये संत ने बताया है कि भक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक प्राप्त होती है, भोग परतन्त्रतापूर्वक

प्राप्त होते है। भक्ति स्व मे ही सुलभ होती है, भोग पर– अन्य के संयोग से अत्यधिक श्रम से मिलते है। नित्य प्राप्त सत्य–परमात्मा का अनुभव नित्य विद्यमान स्व मे होता है, उसके अनुभव का साधन स्वाध्याय है।

स्व मे जब किसी अन्य के स्मरण–चिन्तन नहीं होते, तब जो शेष है वही तो परमात्मा है जो नित्य विद्यमान है पर अन्य की स्मृति से वह ढका–सा रहता है। जिस प्रकार सूर्य से उत्पन्न बादल सूर्य को ढके हुए से दीखते है और उसी की किरणों से छिन्न–भिन्न हो जाते है उसी प्रकार अपने आप द्वारा पर को स्वीकार करा लेने पर सत्य ढक–सा जाता है, अस्वीकार करते ही आवरण हट जाता है। एक संत ने हमें समझाया कि स्वका अध्ययन कर लेने के पश्चात् शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये, स्व को जाने बिना शास्त्र अध्ययन से अहंकार पुष्ट होता है, नाम की तृष्णा प्रबल होती है। स्व के अध्ययन के लिये किसी की अपेक्षा नहीं है, पर के अध्ययन के लिये दूसरे की अपेक्षा है। अन्य के अध्ययन से भोग भले ही मिलते है, योग नहीं होता। स्व के अध्ययन से योग की सिद्धि सुलभ होती है।...... स्वाध्याय मे भोग नहीं है, न संघर्ष है, न अशान्ति है, केवल दर्शन है। स्वाध्याय के द्वारा शान्ति मिलती नहीं, नित्य मिली दीखती है।...... एक संत ने हमें सावधान किया था कि जब देखते–देखते दृश्य की सीमा पार कर देखने को कुछ नहीं रहता है, तभी स्व का बोध होने पर ही परमात्मा का बोध होता है। स्व के अध्ययन से उस मिलावट का ज्ञान होता है जिसके कारण अहं साकार दीखता है, मिलावट से अलग हुए बिना स्व मे नित्य विद्यमान सत्य का दर्शन नहीं होता। जब स्व मे नाम–रूप नहीं रह जाते तभी शुद्ध चैतन्यमात्र शेष रहता है, यह अनुभूति परमात्मा की अनुभूति है। आकारयुक्त 'मै' का ज्ञान जीव है, जीव अज्ञान मे ही है, अहंकाररहित आत्मा ही परमात्मा है, वहाँ अज्ञान नहीं है। शान्त रहकर स्व के सतत चिन्तन से ही आत्मा की अनुभूति होती है। एक संत समझा रहे थे कि सत्य को जानने के लिये बाहर कहीं न भटको, केवल स्व की ही शरण लो, आत्माराम को पाने के लिये शिव की शरण लेनी पड़ती है, स्व मे ही शिवतत्व है, जहाँ अनेकता का अन्त होता है, वहाँ एकान्त कैलाश में शक्ति–शिव का दर्शन होता है। शिवशक्ति के योग के लिये जो स्व नहीं है उससे तादात्म्य तोड़ना पड़ता है। शब्दों को छोड़कर स्वयं मे शान्त होने से परमात्मा की उपलब्धि का ज्ञान होता है। सत्य की विस्मृति पर के सङ्ग से होती है, पर के सङ्ग मे ही संसार सामने रहता है, स्व की स्मृति मे सत्य परमात्मा का योग होता है।

स्वाध्याय द्वारा ही नामरूप का अभिमान मिटता है, इसीलिये साधक को नामरूपरहित स्व के चिन्तन मे ही विश्राम मिलता है। परके सङ्ग मे तो काम–ही–काम रहता है। एक संत कह रहे थे कि स्व के अज्ञान मे ही जो परमात्मा जगन्मय दीखता है, स्व के ज्ञान मे ही वही जगत् परमेश्वरमय दीखता है। स्वाध्याय द्वारा ही विषमता को पार करने पर समता आती है, समता मे सत्य परमात्मा की अनुभूति होती है। जो कुछ अपने आप से भिन्न है, उसी से अध्ययन आरम्भ होता है और पर की प्रकृति की सीमा से लौटकर स्व के अध्ययन से अध्ययन की समाप्ति होती है। हमें संत ने सावधान किया है कि देहादि–पर वस्तुओं के सङ्ग से देहाभिमान, धन, विद्या और कुल के अभिमान आदि की रक्षा होगी, स्वधर्म की रक्षा नहीं होगी। इसलिये स्व को जानो, पर का चिन्तन छोड़कर स्व का चिन्तन करो। स्व मे सत्य विद्यमान है, स्व मे स्थिर होने पर ही नित्य योग है, स्व मे प्रीति समेटने पर ही भक्ति है।

बालक राजू को जीवनदान

जगदीश राय बंसल 'अधम' गोहाना

श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज की अद्‌भुत कृपालीलाएं पढ़ कर प्रत्येक गुरु भाई–बहिन आत्मविभोर हो जाता है। मगर उस समय का तो कहना ही क्या, जब कोई गुरुदेव जी महाराज का लाड़ला संस्कारी मुक्तभोगी शिष्य स्वयं, उस काल चक्र, युग चक्र एवं जग चक्र को एक ही साथ चलाने वाले आराध्यदेव दादा गुरु प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं श्री सद्‌गुरु श्री चन्द्र मोहन जी महाराज द्वारा की गई कृपालीलाएं सुना कर आनन्दित करता है।

वे परम योग योगेश्वर कृपानिधान किसको निमित्त बना कर, कब और कहाँ, किस अशरण शरण के संस्कार का भुगतान कैसे करते हैं? यह समझ पाना उच्च कोटि के कृपा पात्र शिष्य की शक्ति से बाहर की बात है। अथवा अकारण दयालु सर्व समर्थ गुरुदेव जी की दिव्य कृपा पर निर्भर करता है।

इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग आदरणीय गुरु भाई श्री पुष्कर दत्त शर्मा जी द्वारा घटित है। श्री शर्मा जी को आश्रम से सम्बन्धित सभी गुरु बहिन–भाई पहचानते ही होंगे। आदरणीय शर्माजी का सम्पूर्ण जीवन योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज की सेवा में समर्पित रहा है। वर्तमान में श्री शर्मा जी आपके हमारे गुरुदेव महाराज जी की जन्म स्थली अलुपुर धाम में सेवा रत हैं। हालांकि श्री शर्मा का शरीर अब उतना कार्य भार वहन करने योग्य नहीं रहा, फिर भी आतुरत्वा की देख–रेख, सेवाभाव करके, उनका दिल जीतने से नहीं चूकते। स्थानीय भाषा में श्री शर्मा जी को प्यार से 'दादा पोहकर' भी पुकारा जाता है। प्रस्तुत प्रसंग 'दादा पोहकर' की तरफ से ही लिखने का दुस्साहस किया जा रहा है।

यह विलक्षण कृपा प्रसंग सन् 1966 का है। मैं उन दिनों आश्रम से अपने गांव घनाना (रोहतक) आया हुआ था। प्रातः भोर में उठ कर शौचादि की निवृत्ति के निमित्त अपने गांव से बाहर अपने खेतों की तरफ चला जाया करता था। एक प्रातः खेतों से वापिसी के समय, कुछ उजाला–सा हो चुका था। मैं शीघ्रता कर रहा था क्योंकि प्रातःकालीन आरती, पूजा एवं स्वाध्याय का समय निकला जा रहा है। मेरे घर पहुँचते ही मेरी धर्मपत्नी ने कहा कि मैं बहुत देर से आपका इन्तजार कर रही हूँ। गांव में अपने पं. राम किशन का लड़का राजु, जो छः माह पहले ही दुनिया में आया था आज उसका स्वर्गवास हो गया है। गांव के तमाम आदमी उसके घर पर जा चुके हैं। आप भी शीघ्र चले जाएं।

मैं उसी समय पं. राम किशन के घर पर पहुँच गया। उनका घर आदमियों से खचा–खच भरा था। शोक का सन्नाटा पैर पसारे हुआ था। कहीं बैठने की जगह न पा कर मैं मुख्य द्वार की चौखट के साथ (देहली पर) बैठ गया। स्थानीय चिकित्सक भी जिससे कई दिनों से राजू का इलाज चल रहा था, वहीं बैठा था। परिवार के सदस्यगण बहुत व्याकुल थे और अविरल अश्रुधारा

बहा रहे थे। मृतक के अन्तिम संस्कार के लिए सभी तैयारियों में मात्र कफन का ही इन्तजार था। सभी आदमी उदास चेहरा लिए बैठे थे। कोई किसी से बात नहीं कर रहा था।

एकायक मृतक राजू की माता जी खड़ी हुई। वह राजू के मृतक शरीर को लेकर बाहर की तरफ चली। सभी की आँखें जानना चाहती थी कि यह राजू की जननी कहाँ जा रही है? क्या कर रही है? मगर कोई कुछ बोला नहीं। चूंकि मैं मुख्य रास्ते पर बैठा था, इसलिए थोड़ा बगल में सरक गया कि यह बाहर की तरफ आ रही है। मगर मैंने मन ही मन यह भी सोचा शायद मेरे पास आ रही है और अगर यह मेरे पास आती है, तो गलत भी है। मैं इसी उधेड़ बुन में था कि ये तो वास्तव में मेरे पास आ गई। राजू के मृतक शरीर को मेरे पैरों में रख कर सिसक–सिसक कर फूट पड़ी। रोते–रोते बोली "अपने गुरु महाराज के नाम पर आप ही दया करो, कृपा करो, कुछ करो, मेरे कलेजे के टुकड़े को बचा लो। मेरे लाल को बचा लो?" और स्वयं तो रो ही रही थी, वहाँ उपस्थित जनों को भी रोना आ गया। उस समय मैं हैरान हो गया और मेरे मुख से यही निकला कि "बच्चे को वहीं ले जाओ। गुरु महाराज ही कृपा करेंगे, मेरे पास कुछ नहीं है। ले जाओ वहीं पर"। इतना मेरे कहने पर राजू की माता जी बच्चे को पहले वाले स्थान पर ले गई। रुदन की ध्वनियाँ जाग उठी। मैंने मन ही मन सर्वसमर्थ्य गुरु चरणों में दण्डवत प्रणाम किया और प्रार्थना की कि हे भाग्य विधाता, सर्व व्यापक, करुणा निधान, अन्तर्यामी योग योगेश्वर, दया के सागर अगर मेरी प्रार्थना वहीं सुन रहे हैं तो इस बच्चे के प्राणों की भीख देने की कृपा करें। आदि।

आ गई लहर–शिवा के मन में

चमत्कार! महान चमत्कार! अगले ही क्षण बच्चे ने कुछ गतिविधि की। शोक में डूबा जन समूह आनन्दित हो उठा। महाप्रभुजी रामलाल की जय, गुरु चन्द्रमोहन जी महाराज की जय से वातावरण गुरुमय हो गया। मैं गुरु चरणों में खोया रहा। और मेरे पैर चलकर मुझे हमारे घर ले आए। घर पहुँच कर मैंने गुरु चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। जब मेरी स्थिति सामान्य सी हुई तो आदरणीय भाई जी ज्ञानी राम बाबा का यह भजन याद आ गया:–

"गुरु चन्द्र मोहन करतार, तुम्हारी लीला अपरम्पार, भेद तेरा पाया ना"

यह चमत्कारी समाचार, आग की तरह दूर–दूर तक फैल गया। गांव में पं. रामकिशन के घर कई दिनों तक आदमियों का तांता लगा रहा। एक सप्ताह पश्चात मैं हर रोज की तरह एक दिन प्रातः काल जब खेतों की तरफ जा रहा था तो अकस्मात् एक वाणी सुनाई दी "पुष्कर"? मैंने आवाज की तरफ ऊपर मुंह करके देखा तो साक्षात ब्रह्माण्ड नायक, अन्तर्यामी, प्रति पल के जीवन दाता जगत नियन्ता, प्राणी मात्र के रक्षक, योगयोगेश्वर दादा गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज आकाश मार्ग से विचरते हुए कह रहे थे "पोहकर! वो बच्चा हमने जिन्दा कर दिया है। अब हम जा रहे हैं।" इतना बताकर प्राण दाता महाप्रभु जी अन्तर्ध्यान हो गए। और मैं अनमना–सा आंखें फाड़े आकाश में देखता रह गया। किसी ने ठीक ही कहा है:–

गुरुदेव की कृपा से सब कार्य हो रहा है।
करते हैं मेरे प्रभु जी, मेरा नाम हो रहा है।।

आज प.रामकिशन का समस्त परिवार अपने गुरु देव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से दीक्षित है और राजू जिसकी आयु अब 42 वर्ष हो चुकी है अपने परिवार, बाल गोपालो के साथ गुरुदेव की छत्र–छाया में सुखमय जीवन यापन कर रहा है।

धन्य है ऐसे आपके और सब के भाग्य विधाता दादा गुरुदेव योग योगेश्वर महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जो, अशरण–शरण पर प्रति पल दया करते है।

गुरुजी योग बांटने आया

दोहा:– स्वर भी तेरा, सुर भी तेरा, तेरा ही गुण गान।
मैं तो धौकनी लौहार की, सांस लेत बिन प्राण।।
तर्ज:– श्याम चूड़ी बेचने आया.......
धोती कुर्ते का पहनावा–गुरु जी योग बांटने आया।
सिद्ध गुफा मन भाया– प्रभु राम लाल की छाया।।
अलूपुर जन्म था पाया–भक्ति का रंग सवाया।
माँ चरती का जाया– गुरु जी योग बांटने आया।। धोती.......
गुरु मन्त्र खूब जपाया– जीवन सत्य रोज कराया।
गीता पाठ पढ़ाया– गुरु जी योग बांटने आया।। धोती........
कश्मीर से कन्या कुमारी–लल्ला कर लो तपस्या भारी।
योग का डंका बजाया–गुरु जी योग बांटने आया।। धोती........
ध्यान धारणा बनाओ–योग समाधी लगाओ।
अष्टांग योग समझाया–गुरुजी योग बांटने आया।। धोती........
कितनों के संकट हारे– कितने भव सागर तारे।
कितनों का प्राण लौटाया –गुरुजी योग बांटने आया।। धोती......
हे योगेश्वर अन्तर्यामी–हितेश्वर करुणा स्वामी।
हे योगी राज तेरी माया–गुरुजी योग बांटने आया।। धोती........
ऐसे कर्म नही थे मेरे–साधक धर्म नहीं थे मेरे।
जो 'अधम' ऋषिकेश अपनाया गुरुजी योग बांटने आया।। धोती.......

□□□

परम चेतन हमारा स्वरूप

कु. रचना शर्मा, गंगापुर सिटी

हमारी आत्मा को संतमत के अनुसार अत्यंत निर्मल व पवित्र बताया गया है। हम सभी आत्मरूप है फिर क्यों हम अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित के फेर में पड़ जाते है। हमारी आत्मा तो अविनाशी, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, सभी प्रकार के आवरणों से रहित है और हमारा मानव शरीर विनाशी, सगुण, अशुद्ध और आवृत है। फिर यह जन्म-मृत्यु रूप संसार क्या है? इस संसार का अस्तित्व क्या है? ये सब कर्म हमारे अन्दर उचित अनुचित का भाव कैसे पैदा कर देते हैं? इसका कारण है, यह मायावी संसार। संसार में जन्म लेने के पश्चात् हमारी आत्मा इस मायावी दुनिया का संग करती है और तभी से यह हमारी इन्द्रियों का गुलाम बनकर रह गया। जब से हमारा मन अपने मूलस्रोत (ब्रह्म) से अलग हुआ वह इन्द्रियों का गुलाम बन गया और सदा तुच्छ इन्द्रिय सुखों की ओर दौड़ता रहता है। भ्रमवश सुखद प्रतीत होने वाले जगत के लुभावने दृश्यों की ओर हमारा मन अनायास ही खिंचने लगता है। उस परम प्रभु की त्रिगुणात्मिका माया से कोई नहीं बच पाया। बड़े-बड़े ज्ञानी धीर पुरुष भी उसका शिकार हो जाते है, फिर हमारे जैसे साधारण मनुष्यों की तो बिसात ही क्या?

हमारी आत्मा दृष्टा है और हमारी यह देह दृश्य। हमारी यह आत्मा तो स्वयं प्रकाशरूप है और हमारी देह काठ की तरह अचेतन। हमारी आत्मा तो सभी प्रकार के आवरणों से रहित अग्नि के समान प्रकाशमान है और यह देह जड़। वस्तुतः संसार का अस्तित्व है ही नहीं। फिर भी जब तक देह इन्द्रिय और प्राणों के साथ आत्मा की सम्बन्ध भ्रांति है तब तक हमें अज्ञान के कारण यह सब सत्य सा प्रतीत होता है। जैसे स्वप्न में अनेकों विपत्तियां आती है पर वे वास्तव में है नहीं। जब तक हमारा स्वप्न नहीं टूटता उनका अस्तित्व रहता है। हम अज्ञान रूपी निन्द्रा के आगोश में स्वप्न को यथार्थ समझने लगते है। वैसे ही संसार का अस्तित्व न होने पर भी हम विषयों का चिंतन करते रहते हैं। हमारे जन्म-मृत्यु रूप संसार की निवृत्ति नहीं होती। जब तक हम स्वप्न देखते रहते हैं तब तक हमें अनेकों विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, परन्तु जब हमारी नींद टूट जाती है, हमें चेतना आती है तो न तो स्वप्न ही रहते है, न उसके कारण होने वाले मोह आदि विकार।

इसी अज्ञान रूपी घोर निन्द्रा में डूबे हुए संसार रूपी स्वप्न में आनन्दित होते मनुष्य को चेताने के लिए ही गुरुदेव इस संसार में अवतरित होते है। हमारे जैसे अज्ञानी मनुष्यों को ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाते है। उनके द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करने पर हमारे अन्दर व्याप्त अन्धकार स्वतः नष्ट होने लगता है। प्रारम्भ में यह मार्ग बड़ा दुर्गम लगता है क्योंकि यह पथ काँटों से भरा है। पग पग पर झुलसन है, तपन है, स्वयं का अस्तित्व ही समाप्त कर देने पर पूर्णता की प्राप्ति होती है। मगर जब करुणामूर्ति भक्तवत्सल परमपिता की प्यार भरी थपकी हमें मिलती है तो वही दुर्गम पथ हमारे लिए कैसे सहज हो जाता है, पता ही नहीं चलता। कैसे कब हम उस

अलौकिक दिव्य पथ के अनुगामी बन जाते हैं, हमें पता ही नहीं लगता। दिन पर दिन उस यात्रा को पूर्णता की ओर ले जाने की हमारी लालसा बढ़ती जाती है। क्योंकि उन परम दयालु की प्रेम रूपी प्रकाश की एक किरण भी हमें मिल जाती है तो इस समस्त संसार का प्रेम तुच्छ लगने लगता है। जिस प्रकार एक शिशु जब अपनी माँ की तरफ दौड़ने लगता है तो कैसे आँखों में चमक उभर आती है। अलौकिक छवि उसके मुखमंडल पर उभर आती है। वह मार्ग की बाधाओं से नहीं घबराता, खिलखिलाता हुआ माँ की गोद पाने के लिए अग्रसर होता है। माँ जब अपने शिशु को आगे बढ़ता देखती है तो स्वयं दौड़कर उसे गोद में उठा उसे सीने से लगा लेती है। बस यही तो हमारे परमपिता करते हैं। हमारी उत्साह–उमंग देखकर हमें निरंतर अपने पथपर अग्रसर होता देख स्वयं ही हमारी तरफ बाहें फैला देते हैं। परमार्थ सत्ता सर्वव्यापक है, अंतर्दृष्टा है, एक माँ की भाँति उनकी हमारी हर गतिविधियों पर दृष्टि रहती है।

जब हम साधना रूपी रथ पर आरूढ़ होकर देहाभिमान रूपी अंधकार का छेदन कर देते हैं, हमारे अन्दर किसी प्रकार की आशा तृष्णा नहीं रहती तब हमारे अन्दर परमपिता का तेज प्रकाशित होता है। यह निश्चित सत्य है कि जो पदार्थ जिससे बनता है, जिसके द्वारा प्रकाशित होता है वही उसका वास्तविक स्वरूप है, वही उसकी परमार्थ सत्ता है। अपनी आत्मा को आलोकित करने का सुगम मार्ग बतलाते हैं–आत्मज्ञानी गुरुदेव।

उनके द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करके इस मायावी दुनिया के स्वप्न को छिन्न–भिन्न करके अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में ही मग्न हो जायें और सब प्रकार की विषय वासनाओं से रहित हो जायें। उस पवित्र पथ का अनुगामी बनने के पश्चात् जैसे–जैसे हम इस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं हमारा चित्त एकाग्र होने लगता है। वैसे–वैसे हमारे अन्तःकरण का मैल धुलने लगता है। सूक्ष्म वस्तु के वास्तविक तत्व के हमें दर्शन होने लगते हैं। जैसे अंजन के द्वारा नेत्रों का दोष मिटने पर सूक्ष्म वस्तुओं को देखने की शक्ति आने लगती है, यदि हम निरन्तर विषयों का चिंतन करते हैं तो हमारा चित्त विषयों में फँस जाता है और यदि हमारे हृदय में उस परम तत्व को जानने की तीव्र लालसा प्रकट हो जाये तो हमारा चित्त उस परम तेज में तल्लीन हो जाता है। मगर जब तक हम दूसरे साधनों और फलों का चिंतन नहीं छोड़ देते हमारी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती।

हमारी इस यात्रा में सांसारिक बाधायें आती हैं क्योंकि कई जन्मों के संस्कार हमारे चित्त में पड़े रहते हैं। अगर हम वर्षों से पुराने पड़े बर्तन को साफ करेंगे तो उसमें समय तो लगेगा ही। धीरे–धीरे रगड़ने पर ही उसमें चमक आयेगी। इसी प्रकार हमारे चित्त रूपी दर्पण में तभी हमारा आत्म स्वरूप प्रतिबिम्ब के रूप में उभर कर आयेगा जब उसकी पूरी तरह धुलाई हो जायेगी। शनैः–शनैः जब हमारा चित्त उस आत्मज्योति में स्थित होने लगता है तो हमारा मन अनायास ही उस परम तेज की ओर खिंचता चला जाता है। उस मार्ग की ओर बढ़ने की हमारी लालसा तीव्रतर होती चली जाती है, उस परम तत्व का निरंतर चिंतन करने से जब हमारा चित्त शुद्ध हो जाता है, पूर्ण एकाग्रता से उनमें ही रम जाता है, तो हम परमप्रकाश को पाने के अधिकारी बन जाते हैं।

हमारा मन रूपी दानव बड़ा बलवान है, यह क्षणभर के लिए भी नहीं ठहरता, पल में हमें यहाँ से कहाँ ले जाता है, हम सब मन के चलाये चलते हैं मगर जब हम मन को एकाग्र करने की

कला सीख लेते हैं तो वही मन हमारी परमार्थिक उन्नति में सहायक बन जाता है। जब मन द्वारा इन्द्रियों को, उनके विषयों को, खींच लेते हैं और मन को बुद्धि रूपी सारथी की सहायता से उस परम तत्त्व में लगा देते हैं। उस प्रकार की एक किरण को ही सहारा बनाकर उस पूर्ण प्रकाश की ओर ले जाते हैं। जब हम उस पूर्ण प्रकाश की स्थिति में अपने आप को अनुभव करते हैं तो उसी परम प्रकाश में हमारे प्राणाधार, हमारे आराध्य का, मनोहारी स्वरूप उभरकर सामने आता है, जिसे हमने कहाँ–कहाँ नहीं ढूंढा, जिसे पाने के लिए ऋषि मुनि जंगलों में कठोर तपस्या करते हैं वह तो हमारे हृदयों में छिपकर बैठा था, हमारे अन्तर्मन में जब हमने उसे खोजना आरंभ किया और अपने अंतर में प्राप्त कर लिया, वह परमपिता परमेश्वर तो हमसे अलग था ही नहीं। वह परमतेज तो हमारे ही अन्दर व्याप्त है। बस हम उसे पाने के अधिकारी बन जायें तो वह स्वयं ही हमारे अंदर प्रकाशित हो जाता है। तब हमें ऐसा भान होने लगता है जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योति में मिलकर एक हो जाती है।

इस प्रकार जब तीव्र साधना द्वारा हम अपना चित्त उस परम प्रकाश में संयमित करते हैं तब उस समाहित चित्त के द्वारा वस्तु की अनेकता तत्संबंधी ज्ञान और उनकी प्राप्ति के लिए होने वाले कर्मों का भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है। आत्मा और परमात्मा की एकरूपता का ज्ञान हमें होने लगता है। तब हमें इस जगत की नश्वरता का ज्ञान होता है और हमारे चित्त में शुद्धात्मा के रूप में परम ज्ञान प्रकट होता है।

□□□

श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम में रुद्र–महायज्ञ सम्पन्न

प्रति वर्ष की भाँति श्री सिद्धगुफा आश्रम में श्रावण मास में रुद्राभिषेक का कार्यक्रम रहा। यह कार्यक्रम 5 अगस्त से 15 अगस्त तक रखा गया था। 15 अगस्त को इसकी पूर्णाहुति हुई। कर्णवास से पधारे प्राचार्यश्री बैकुण्ठ शर्मा के आचार्यत्व में यह कार्यक्रम चला। इस कार्यक्रम में बाहर से आये लगभग दो सौ साधकों ने गुरुमन्त्र जाप व ध्यानाभ्यास का नियमित अभ्यास चलाया। यज्ञशाला में वेदध्वनि बराबर गूँजती रही। वहीं पर साधक ध्यानयोग में मग्न रहे। पूरा पखवाड़ा आध्यात्मिक वातावरण युक्त रहा।

इस प्रकार से बहुत ही आनन्ददायक वातावरण में यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

जादू सा असर करता है भारतीय विचार

स्वामी विवेकानन्द

भारत का दान है **धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता**। धर्म प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे–आगे मार्ग निष्कंटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व को शोणित–प्रवाह पर ढोने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान और दार्शनिक तत्व खून से भरे जख्मी आदमियों के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शान्ति और प्रेम के पंखों से उड़कर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और हुआ भी सदा यही है। अतएव संसार के लिए भारत को सदा कुछ देना पड़ा है। लन्दन में किसी युवती ने मुझसे पूछा, "तुम हिन्दुओं ने क्या किया? तुमने कभी किसी भी जाति को नहीं जीत पाया है।" अंग्रेज जाति की दृष्टि में–वीर, साहसी, क्षत्रियप्रकृति अंग्रेज जाति की दृष्टि में–दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टि बिन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नहीं की, यही हमारा महान् गौरव है। तुम लोग आजकल सदा यह निन्दा सुन रहे हो कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं, और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे ऐसे व्यक्तियों के मुँह की होती है, जिनसे हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह जान पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्थन की प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म ने कभी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की, उसने कभी खून की नदियाँ नहीं बहायी, उसने सदा आशीर्वाद और शान्ति के शब्द कहे, सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कथा सुनायी। यहीं, केवल यहीं, दूसरे धर्म से द्वेष न रखने के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यहीं परधर्म–सहिष्णुता तथा सहानुभूति के ये भाव कार्यरूप में परिणित हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धान्त–चर्चा मात्र है। यहीं, केवल यहीं, यह देखने में आता है कि हिन्दू लोग मुसलमानों के लिए मसजिदें और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव आप समझ गये होंगे कि किस तरह हमारे भाव धीरे–धीरे शान्त और अज्ञात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब विषयों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा लक्षण है, उसका शान्त स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभूत शक्ति उसके पीछे है, उसका प्रकाश जबरदस्ती से नहीं होता। भारतीय विचार सदा जादू सा असर करता है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

डाक (डाकघर) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं सुभावकुशल योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मोहर लगाकर (अलग छाप) का विज्ञापन
2. लेटर बॉक्सों पर प्रचार का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. मेघ कार्डों पर प्रचार का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर। रु. 1000 प्रति मिलन प्रतिमाह परिदत्त वाले रु. 500.00 प्रति पिक्चर
4. आवरण परिवार में मुद्रित लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.00 प्रति वर्ग सेंटीमीटर प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर महत्वपूर्ण कोई भाग पर पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 1000/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर अलग कोरियोग्राफ करके लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग प्रोसेसिंग कार्ड का मूल्य रु. 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्डों की सहायता से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन। दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक, कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
आध्यात्मिक का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

SIDDHYOG Postal Regd. No. Ag. 19/06-08

SEPTEMBER 2007

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दारालाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दारालाल शर्मा